संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित

ऋषि प्रसाद

हिन्दी

मूल्य : रु. ६/-
अंक : २००
अगस्त २००९

बहा रही जो ज्ञान भक्ति औ'
कर्म की निर्मल धारा,
प्रेमसहित पढ़ कितनों ही को
भव का मिला किनारा।
'ऋषि प्रसाद' को आत्मसात
कर कितने हुए निःशंक,
प्रस्तुत है गुरुकृपा से
यह दो सौवाँ अंक ॥

अंक : २००
स्वर्णिम द्विशतक

पूज्यश्री का दर्शन-सत्संग पाकर खिल उठी नेपाल की जनता

पूज्य बापूजी के सत्संगों में उमड़ा विशाल जनसैलाब

गोरखपुर

अयोध्या

लखनऊ

वाराणसी

ऋषि प्रसाद

मासिक पत्रिका

हिन्दी, गुजराती, मराठी, उड़िया, तेलगू, कन्नड़ व अंग्रेजी भाषाओं में प्रकाशित

वर्ष : २० अंक : २००
अगस्त २००९ मूल्य : रु. ६-००
श्रावण-भाद्रपद वि.सं. २०६६

सदस्यता शुल्क (डाक खर्च सहित)

भारत में

(१) वार्षिक	: रु. ६०/-
(२) द्विवार्षिक	: रु. १००/-
(३) पंचवार्षिक	: रु. २२५/-
(४) आजीवन	: रु. ५००/-

नेपाल, भूटान व पाकिस्तान में (सभी भाषाएँ)

(१) वार्षिक	: रु. ३००/-
(२) द्विवार्षिक	: रु. ६००/-
(३) पंचवार्षिक	: रु. १५००/-

अन्य देशों में

(१) वार्षिक	: US $ 20
(२) द्विवार्षिक	: US $ 40
(३) पंचवार्षिक	: US $ 80

ऋषि प्रसाद (अंग्रेजी)	वार्षिक	द्विवार्षिक	पंचवार्षिक
भारत में	७०	१३५	३२५
अन्य देशों में	US$20	US$40	US$80

कृपया अपना सदस्यता शुल्क या अन्य किसी भी प्रकार की नकद राशि रजिस्टर्ड या साधारण डाक द्वारा न भेजा करें । इस माध्यम से कोई भी राशि गुम होने पर आश्रम की जिम्मेदारी नहीं रहेगी । अपनी राशि मनीऑर्डर या डिमांड ड्राफ्ट (अमदावाद में देय) द्वारा ही भेजने की कृपा करें ।

संपर्क पता : 'ऋषि प्रसाद', श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, साबरमती, अहमदाबाद-३८०००५ (गुजरात).
फोन नं. : (०७९) २७५०५०१०-११, ३९८७७७८८, ६६११५५००.
e-mail : ashramindia@ashram.org
web-site : www.ashram.org

स्वामी : संत श्री आसारामजी आश्रम
प्रकाशक और मुद्रक : श्री कौशिकभाई पो. वाणी
प्रकाशन स्थल : श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, साबरमती, अहमदाबाद - ३८०००५ (गुजरात).
मुद्रण स्थल : अरावली प्रिंटर्स एंड पब्लिशर्स (प्रा.) लि., डब्ल्यू-३०, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-II, नई दिल्ली-११००२०.
सम्पादक : श्री कौशिकभाई पो. वाणी
सहसम्पादक : डॉ. प्रे. खो. मकवाणा, श्रीनिवास

इस अंक में...

(१) सम्पादकीय ... २
✽ 'ऋषि प्रसाद' के २००वें अंक की प्रकाशन-वेला में...
(२) तत्त्व दर्शन ... ३
✽ योगविद्या से भी ऊँची है आत्मविद्या
(३) ज्ञान दीपिका ... ५
✽ शास्त्रीय संगीत
(४) पर्व मांगल्य ... ७
✽ श्रीकृष्ण-अवतार का उद्देश्य ✽ गणेश चतुर्थी या कलंकी चौथ
(५) प्रेरक प्रसंग ... ९
✽ वाह ! क्या समर्पण है
(६) पर्व मांगल्य ... १०
✽ कर्मबंधन से बचाये रक्षाबंधन
(७) संस्कृति सुवास ... १२
✽ सर्प में भी भगवद्बुद्धि की प्रेरणा : नागपंचमी
(८) भक्त चरित्र ... १४
✽ भगवद्भक्त वृत्रासुर
(९) भागवत अमृत ... १७
✽ भाव से भलाई
(१०) कथा अमृत ... १८
✽ कर्म का फल
(११) प्रसंग माधुरी ... २०
✽ अपना भाग्य अपने हाथों में
(१२) पावन संस्मरण ... २१
✽ महापुरुषों की युक्ति
(१३) गुरु संदेश ... २२
✽ अहंकार से रहित हों
(१४) सत्शास्त्रों का आदर ... २३
(१५) ज्ञान गंगोत्री ... २४
✽ संतों का समय व्यर्थ न करें
(१६) नीति ज्ञान ... २५
✽ एको धर्मः परं श्रेयः
(१७) 'ज्योत से ज्योत जगाओ' अभियान ... २६
(१८) पर्यावरण सुरक्षा ... २७
✽ स्वास्थ्य एवं पर्यावरण रक्षक प्रकृति के अनमोल उपहार
(१९) स्वाध्याय ... २८
(२०) शरीर स्वास्थ्य ... २९
✽ हृदयरोग : सुरक्षा व उपाय
(२१) भक्तों के अनुभव ... ३०
✽ पूज्य बापूजी की तस्वीर ने तकदीर बदल दी
(२२) संस्था समाचार ... ३१

विभिन्न टीवी चैनलों पर पूज्य बापूजी का सत्संग

संस्कार				care WORLD	MA TV (यूरोप)
रोज सुबह ७-५० बजे (सोम से शुक्र)	रोज सुबह ७-३० बजे	रोज सुबह ६.१० बजे	रोज सुबह ८ बजे व रात १० बजे	रोज सुबह ७-०० बजे	दोपहर १२-३० बजे (बुध व शनि)

'ऋषि प्रसाद' के २००वें अंक की प्रकाशन-वेला में...

आप सबकी चहेती 'ऋषि प्रसाद' पत्रिका ने १९ वर्षों में दो सौ अंकों का गौरवपूर्ण सफर सफलतापूर्वक पूरा किया है। इसकी इस सफलता पर हम आप सभी पाठकों का हार्दिक अभिनंदन करते हैं। श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ महापुरुष परम पूज्य संत श्री आसारामजी बापू एवं अन्य महापुरुषों की अनुभव-सम्पन्न वाणी को आप तक पहुँचानेवाली इस पावन पत्रिका को आप लोगों ने अत्यंत आदर-सम्मान देते हुए खूब प्रेम से पढ़ा और अनेक लोगों ने इसमें व्यक्त विचारों को अपने आचरण में उतारकर अपना जीवन धन्य किया है यह हमारे लिए गर्व की बात है।

अनेक परोपकारी पुण्यात्मा भक्तों ने इस पत्रिका में दिये भक्तियोग व ज्ञानयोग के साथ निष्काम कर्मयोग से भी लाभान्वित होने हेतु घर-घर 'ऋषि प्रसाद' पहुँचाने की सेवा खोज ली और गीताज्ञान को, गुरुज्ञान को समाज के कोने-कोने तक फैलाने का श्रेय प्राप्त किया है।

हमें इस बात का अत्यधिक आनंद है कि हम इस पत्रिका के द्वारा प्रातःस्मरणीय परम पूज्य संत श्री आसारामजी बापू के प्रवचनों के माध्यम से भारतीय संस्कृति के गीता, रामायण, भागवत एवं उपनिषदों के सार अमृत को तथा संतों-महापुरुषों की वाणी को अत्यंत सरल तथा बोधगम्य भाषा में देश-विदेश के पाठकों तक पहुँचाने में कल्पनातीत सफलता पा रहे हैं। १९ वर्ष पहले गुजराती भाषा में अंकुरित होनेवाला 'ऋषि प्रसाद' रूपी यह पौधा बहुत ही तीव्र गति से विकसित होता हुआ आज एक विशाल वटवृक्ष के रूप में समाज के सभी वर्गों, सभी जातियों के त्रिविध तापों से तप्त असंख्य दिलों को समान भाव से शीतलता प्रदान कर रहा है। देश के सभी भागों के विभिन्न भाषियों को लाभान्वित करने हेतु आपकी प्रिय पत्रिका आज हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी, उड़िया, कन्नड़, तेलगू- इन सात भाषाओं में प्रकाशित हो रही है तथा प्रेमी पाठकों की माँग के अनुसार भविष्य में कुछ और भाषाओं में भी इसके प्रकाशित होने की संभावना है।

आत्मज्ञानी महापुरुषों के पावन प्रसाद को 'ऋषि प्रसाद' पत्रिका के माध्यम से बाँटने में जो भी साझीदार हो रहे हैं, उन सभी भक्तों तथा नामी-अनामी सज्जनों को भगवान और अधिक उत्साह दें तथा वे दीर्घायु हों। साहस, सच्चाई और स्नेह से वे भविष्य में भी इस दैवी कार्य में तत्परता से लगे रहें। 'ऋषि प्रसाद' पत्रिका भविष्य में भी आप सबके जीवन को भगवत्प्रसाद, भगवन्माधुर्य से संतृप्त करती रहे, ऐसा हमारा सतत प्रयत्न रहेगा।

विनीत
'ऋषि प्रसाद' परिवार,
श्री योग वेदांत सेवा समिति, अमदावाद।

योगविद्या से भी ऊँची है आत्मविद्या

- पूज्य बापूजी

योगविद्या में मन का निरोध होता है, एकाग्रता से सामर्थ्य आता है परंतु ब्रह्मविद्या में मन बाधित हो जाता है और तत्त्व का बोध हो जाता है।

योग में चित्तवृत्ति का निरोध हो जाता है और व्यक्ति समाधिस्थ हो जाता है। समाधि से सामर्थ्य आता है परंतु जीवत्व बाकी रह जाता है। 'पातंजल योगदर्शन' और 'कुंडलिनी योग' के अनुसार अभ्यास करने पर मनोजय हो जाता है, समाधि हो जाती है, सामर्थ्य आ जाता है परंतु जब साधक समाधि से उठता है तो उसे जगत सच्चा लगता है।

योगविद्या से मन का निरोध होता है जबकि आत्मविद्या से मन का बाध हो जाता है।

मन के बाध और निरोध में क्या फर्क है ?

आपने रस्सी में साँप देखा और आपको भय लगा। किसीने आपको आश्वासन दिया और वीरता की अच्छी बातें कहीं। आपने सोचा कि 'यह साँप मेरा क्या बिगाड़ेगा ?' और आप खाने-पीने में, सुख-सुविधा के साधनों में मस्त हो गये। इस प्रकार रस्सी में दिखनेवाले साँप से आपका भय गायब हो गया। परंतु फिर जब रस्सी में दिखनेवाले साँप की तरफ गये तो हृदय की धड़कनें बढ़ गयीं... अर्थात् आप कुछ समय के लिए साँप की सत्यता भूल गये, फिर आपने देखा तो वही रस्सी साँप होकर भासने लगी। यह है मन का निरोध होना।

अगर टॉर्च लेकर आपने रस्सी को देख लिया तो फिर रस्सी दिखेगी तो साँप के आकार की, परंतु साँप आपको सच्चा नहीं लगेगा क्योंकि वह बाधित हो गया। यह है मन का बाध होना।

ऐसे ही आत्मविद्या संसाररूपी सर्प को बाधित कर देती है और योगविद्या मन का निरोध कर देती है तो संसाररूपी सर्प नहीं दिखता। योगविद्या के साथ आत्मविद्या नहीं है तो योगविद्यावाले का पतन हो सकता है। इसलिए 'गीता' में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है : **योगभ्रष्टोऽभिजायते।** पतन से तात्पर्य संसारी व्यक्ति की तरह पतन से नहीं; संसारी की जो स्थिति है उससे तो योगविद्यावाले बहुत ऊँचे होते हैं परंतु आत्मविद्या की ऊँचाई के आगे वे बच्चे हैं।

जब तक आत्मविद्या को ठीक से नहीं समझते, तब तक धन की, विद्या की, सत्ता की कोई-न-कोई माँग बनी रहती है और तुच्छ चीजों का, प्रकृति के गुण-दोषों का आरोप अपने में करके हम लोग एक दायरा बना लेते हैं और उस दायरे से बाहर नहीं निकल पाते। 'मैं पटेल', 'मैं सिंधी', 'मैं गुजराती' - इसी दायरे में उलझकर रह जाते हैं। लोग भले कहें और हम भी ऊपर-ऊपर से 'हाँ' कहें परंतु भीतर से समझना चाहिए कि 'हम गुजराती भी नहीं, पटेल भी नहीं, सिंधी भी नहीं, हम तो हम ही हैं। जो उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय में एकरस साक्षी है, वह परम सत्ता और हम एक हैं।'

जिस सत्ता से यह तन पैदा हुआ, यह मन उत्पन्न हुआ, बुद्धि व अहं उत्पन्न हुए और बदलते रहते हैं, जो इन सबको सत्ता-स्फूर्ति देता है, वह चैतन्य आत्मा हम हैं। उसीको तत्त्वरूप से जानना यह आत्मविद्या का लक्ष्य है।

ऋद्धि-सिद्धि का सामर्थ्य, सफलता आदि सब प्रकृति के अंतर्गत होते हैं। जिन्होंने पानी को घी बना दिया ऐसे योगियों का नाम मैंने सुना है। बीमार को ठीक कर दिया... मुर्दे को जिंदा कर दिया... ये सब ठीक हैं, परंतु हैं सब प्रकृति के अंतर्गत। तत्त्वज्ञान इससे बहुत ऊँची चीज है। तत्त्वज्ञान पाने के लिए चरित्रवान की जिज्ञासा और गुरु की कृपा हो जाय बस ! हो गया बेड़ा पार ! जनक की जिज्ञासा थी और आत्मज्ञानी अष्टावक्र की कृपा हुई, परीक्षित की जिज्ञासा थी और

आत्मज्ञानी शुकदेवजी की कृपा हुई। यह सर्वोपरि पद है। आत्मज्ञान का धन अष्टसिद्धि, नवनिधि के धन से भी ऊँचा है। यह परम धन है। श्रीकृष्ण भी इसकी प्रशंसा करते हैं। रमण महर्षि ने, अष्टावक्र मुनि ने इसी परम पद को पाया। क्या तुम इसे नहीं पाओगे ? कब तक परेशानियों में पचते रहोगे भैया !

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।

'उठो ! जागो ! आत्मज्ञानी गुरु को खोजो और श्रेष्ठ उस आत्मज्ञान को पाओ।'

(कठोपनिषद् : १.३.१४)

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥

'उस ज्ञान को तू तत्त्वदर्शी ज्ञानियों के पास जाकर समझ। उनको भलीभाँति दण्डवत् प्रणाम करने से, उनकी सेवा करने से और कपट छोड़कर सरलतापूर्वक प्रश्न करने से वे परमात्म-तत्त्व को भलीभाँति जानने-वाले ज्ञानी महात्मा तुझे उस तत्त्वज्ञान का उपदेश करेंगे।' **(गीता : ४.३४)**

गहराई से इच्छा हटते ही इच्छित पदार्थ आपके इर्दगिर्द मँडराने लगते हैं - यह प्रकृति का नियम है।

योगविद्या में मन का निरोध होता है, एकाग्रता से सामर्थ्य आता है परंतु ब्रह्मविद्या में मन बाधित हो जाता है और आत्मतत्त्व का बोध हो जाता है।

मन आत्मा में लय हो जाय यह एक बात है और मन बाधित हो जाय यह दूसरी बात है। जैसे विश्वासपात्र व्यक्ति ने सर्प से निश्चिंत कर दिया तो आप निश्चिंत हो गये, परंतु विश्वासपात्र व्यक्ति की जगह कोई दूसरा आकर कहने लगे कि 'भाई ! उन्होंने भले कह दिया कि साँप नहीं काटेगा परंतु आप सँभलना...' तो उसकी सत्यता मौजूद रहेगी। ऐसे ही योगविद्या में कितने भी ऊँचे चले जाओ तो भी योगी को थोड़े-बहुत पतन का भय बना रहता है, परंतु ज्ञानी को कोई भय नहीं क्योंकि ज्ञानी के लिए जगत बाधित हो जाता है। जैसे टॉर्च से रस्सी को रस्सी जानकर सर्प की सत्यता चली जाती है, ऐसे ही आत्मज्ञानी के लिए जगतरूपी सर्प बाधित हो जाता है। ऐसा ज्ञानवान जगत से निर्लेप हो जाता है। कर्तृत्व-भोक्तृत्व के बंधन से मुक्त, जीवन्मुक्त अर्थात् जीते-जी मुक्त हो जाता है। इसके आगे बाकी मुक्तियाँ छोटी हो जाती हैं।

जैसे सूर्य अपने स्थान पर रहकर जगत को अपने किरणरूपी हाथ से छू लेता है फिर भी निर्लिप्त रहता है, ऐसे ही वह चैतन्य 'मैं' अपनी सत्ता-स्फूर्ति की चेतना के द्वारा सारे शरीरों को छूता है फिर भी निर्लिप्त रहता है। सूर्य सब पेड़-पौधों को छूता है और उसीकी सत्ता से सब जीते हैं, फलते-फूलते हैं परंतु वे मिट जायें, नष्ट हो जायें तो भी सूर्यनारायण का बाल तक बाँका नहीं होता।

ऐसे सूर्यनारायण में भी जिसकी सत्ता है उस सत्ता का कुछ नहीं बिगड़ता। वही सत्ता आँखों के द्वारा देखती है, कानों के द्वारा सुनती है, जिह्वा के द्वारा बोलती है, मन के द्वारा सोचती है, बुद्धि के द्वारा निर्णय लेती है, उसीसे सत्ता पाकर अहं 'मैं-मैं' करता है। वही सत्तास्वरूप 'मैं' हूँ, ऐसा बोध हो जाना यह आत्मविद्या का उद्देश्य है।

जीव का यह स्वभाव है कि वह जिस शरीर में आता है उसीको 'मैं' मानकर अपना आयुष्य गिनता है। वास्तव में देखा जाय तो उसने हजारों शरीरों में कई-कई बार जन्म लिये और जिस-जिस शरीर में जन्म लिया उसीको 'मैं' मान लिया परंतु वह वास्तव में 'मैं' नहीं है। अगर वह शरीर 'मैं' होता तो शरीर चला जाने के बाद 'मैं' भी चला जाता... परंतु ऐसा नहीं है।

प्राकृतिक गुण-दोष और पदार्थ आने-जानेवाले हैं, आपका वास्तविक स्वरूप कहीं आता-जाता नहीं है - ऐसा ज्ञान हो जाना आत्मविद्या का लक्ष्य है।

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।

'निश्चय रूप से इस संसार में ज्ञान के समान कोई पवित्र वस्तु नहीं है।'

यदि कोई इस आत्मविद्या के विचार में नित्य तल्लीन रहे तो उसकी कामनाएँ, आकर्षण आदि दूर हो जाते हैं। कामनाएँ दूर होते ही काम्य पदार्थ उसकी शरण खोजने आते हैं। फिर उसे यश की इच्छा नहीं होगी तब भी यश उसके पीछे पड़ेगा, उसे धन की इच्छा नहीं होगी तब भी धन उसकी गुलामी करेगा, भोग की इच्छा नहीं होगी तब भी भोग उसके इर्दगिर्द मँडरायेंगे। कोई कहे कि 'महाराज ! हमें भी तो यश, धन, भोग की कोई इच्छा नहीं है फिर भी यश तो नहीं मिला।' अरे ! 'इच्छा नहीं है' कहकर भी यश तो चाहते हैं, गहराई में तो इच्छा है ! भीतर से इच्छा हटनी चाहिए। गहराई से इच्छा हटते ही इच्छित पदार्थ आपके इर्दगिर्द मँडराने लगते हैं - यह प्रकृति का नियम है।

जिसके चित्त में कोई इच्छा नहीं होती, उसके चित्त में राग-द्वेष भी कैसे हो सकता है ? जिन्होंने अपने हृदय में ठीक से साक्षी होकर अपने स्वरूप को जान लिया, उनको सदैव-सर्वत्र अपना-आपा ही नजर आता है। ऐसे महापुरुषों के चित्त में राग-द्वेष कहाँ ?

प्रारंभ में राग-द्वेष से बचा जाता है, बाद में देश-काल की माया से भी बचा जाता है। अमुक देश में, अमुक काल में प्रीति करना - यह भी माया है। यह माया भी आत्मविद्या की प्राप्ति के बाद छूट जाती है।

योगविद्या में तो राग-द्वेष से बचने पर प्रवेश मिल जाता है और पहुँच भी हो जाती है परंतु आत्मविद्या तो राग-द्वेष से पार करके देश-काल से भी पार कर देती है और परब्रह्म-परमात्मस्वरूप में जगा देती है। ऐसी आत्मविद्या की महिमा है !

स्नातं तेन सर्वं तीर्थं दातं तेन सर्वं दानम्।
कृतं तेन सर्वं यज्ञं येन क्षणं
मनः ब्रह्मविचारे स्थिरं कृतम्॥

'जिसने मन को एक क्षण भी ब्रह्मज्ञान, ब्रह्मविचार में लगाया, उसने सारे तीर्थों में स्नान कर लिया, सारे दान कर दिये तथा अश्वमेध आदि सारे यज्ञ कर डाले।' ❑

शास्त्रीय संगीत

संगीत संपूर्ण मानव-जाति को परमेश्वर द्वारा दी गयी एक सुंदर भेंट है। इसके माध्यम से वह भावपूर्वक ईश्वर से जुड़ सकता है, उसकी गोद में विश्राम ले सकता है अथवा चाहे तो संत सूरदास की तरह परमात्मा का हाथ पकड़कर साकार रूप में अपने समीप ला सकता है। संगीत के माध्यम से मानव तनावमुक्त होकर तन-मन का विश्राम पा सकता है किंतु आज स्थिति विपरीत दिखायी देती है। संगीत को सुख-शांति का माध्यम बनाने की बजाय अशांति एवं पतन का माध्यम अधिक बनाया जा रहा है।

पॉप और रॉक म्यूजिक युवा पीढ़ी के मन-मस्तिष्क को दूषित करने में अहम भूमिका निभा रहे हैं। इस प्रकार के उत्तेजक म्यूजिक का तन-मन पर बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ता है। तरुण लोग जो बहुधा डिस्को तथा पॉप म्यूजिक की महफिलों में जाते हैं उनकी सुनने की क्षमता कम हो जाती है, उनमें चिड़चिड़ापन आने लगता है, बुढ़ापा जल्दी आता है। विज्ञानी डॉ. डायमण्ड कहते हैं : ''पॉप म्यूजिक की एक विशिष्ट प्रतीकात्मक ताल 'डा, डा, डा' दो तिहाई पेशियों की शक्ति को नष्ट करती है।'' इस प्रकार के संगीत से शरीर में तीव्र उत्तेजना पैदा होती है, जो कई बार भीषण विकृति का रूप धारण कर लेती है।

पेरिस का 'ओलम्पिया म्यूजिक हॉल' श्रोताओं से खचाखच भरा था। संगीत का कार्यक्रम आरम्भ हुआ। मधुर स्वर लहरी के प्रभाव से श्रोता झूमने लगे। अचानक एक विलक्षण घटना घटी। संगीत की धुन बदली। संगीत सुनने में तल्लीन शांतचित्त श्रोता परिवर्तित धुन को सुनकर बेचैनी

अनुभव करने लगे । उनकी उत्तेजना बढ़ती ही गयी और अनियंत्रण की स्थिति में जा पहुँची । अपने-अपने स्थान को छोड़कर श्रोता पागलों की तरह एक-दूसरे से संघर्ष करने पर उतारू हो गये । उन्होंने हॉल की कुर्सियाँ तोड़ डालीं, खिड़कियों में लगे शीशों को चकनाचूर कर दिया ।

जाँच करने पर पाया गया कि सारी घटनाओं के लिए वह उत्तेजक धुन ही उत्तरदायी थी, जो पहली बार प्रयोग के तौर पर बजायी गयी थी । रॉक और पॉप के सम्मिलन से बनी उस धुन को बजाने पर शासन द्वारा पाबंदी लगा दी गयी ।

'ओलम्पिया म्यूजिक हॉल' में अचानक श्रोता पागलों की तरह हॉल की कुर्सियाँ तोड़ने लगे, उन्होंने खिड़कियों में लगे शीशों को चकनाचूर कर दिया । जाँच करने पर पाया गया कि...

पॉप और रॉक का तन-मन पर कैसा उत्तेजक प्रभाव पड़ता है उसका यह ज्वलंत प्रमाण है । जो लोग पॉप एवं रॉक म्यूजिक के दीवाने हैं, वे स्वयं को अशांति एवं दुःख की खाई में ही ले जाते हैं ।

इस प्रकार के संगीत से शरीर में उत्तेजना उत्पन्न होने के साथ-साथ जठर (Stomach) की कार्यप्रणाली भी उत्तेजित एवं विचलित हो जाती है । यौन केन्द्रों के उत्तेजित होने से शरीर की बहुमूल्य काम ऊर्जा का भी क्षय होता है ।

विभिन्न प्रयोगों से प्राप्त परिणामों के आधार पर शोधकर्ता इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि भारतीय संगीत चिकित्सा के रूप में अन्य संगीतों की अपेक्षा ज्यादा प्रभावी व उपयोगी है ।

भारतीय शास्त्रीय संगीत पूर्णतः मनोनुकूल एवं वैज्ञानिक है । इसका आधार सप्त स्वर हैं, जिनसे विविध विकारों का शमन होता है । इसके विविध रागों से भी अलग-अलग रोगों में फायदा होता है । जैसे - **भैरवी एवं सोहनी से सिरदर्द एवं मेरुरज्जु के विकार दूर होते हैं । मुलतानी, रामकली एवं सारंग से क्षयरोग, बसंत तथा सोरठ से नपुंसकता, भूपाली एवं मारवा से आँतों के विकारों में लाभ होता है । आसावरी राग से मस्तिष्कीय रोग १००% ठीक होते हैं, ऐसा भी दावा किया जाता है ।**

अलग-अलग तालों का भी विविध रोगों में सकारात्मक प्रभाव पड़ता है । तालों का संबंध शरीर के अलग-अलग आध्यात्मिक चक्रों से है । जैसे : कहरवा-मूलाधार, दादरा-स्वाधिष्ठान, झपताल-मणिपुर, चारताल-अनाहत, त्रिताल-विशुद्धाख्य इत्यादि ।

इस प्रकार लय-ताल बद्ध भारतीय शास्त्रीय संगीत मनुष्य को शारीरिक व मानसिक रूप से स्वस्थ रखने में सक्षम है ।

भारतीय शास्त्रीय संगीत में रोगनिवारक क्षमता तो है पर यह इसका गौण लाभ है । मुख्य लाभ तो यह है कि संगीत हृदय को परमात्मा से जोड़ने का एक सुंदर माध्यम है । सम्राट समुद्रगुप्त के शासनकाल में ऐसे संगीतज्ञ थे जिनके गायन से पत्थर भी मोम की तरह पिघलकर प्रवाही हो जाते थे । उन संगीत प्रवीण गायकों ने तो अपनी कला का उपयोग निर्जीव पत्थर को पिघलाने में किया किंतु आप सात्त्विक शास्त्रीय संगीत, भक्ति संगीत की सहायता से अपने हृदय को पिघलाइये और उसमें हरिभक्ति का रंग डालकर उसे सत्संग के साँचे में ढाल दीजिये, ताकि आपका हृदय प्रभु के अनुभव से सम्पन्न बन जाय ।

यह सचराचर जगत जिसमें भास रहा है उस अधिष्ठानरूप ब्रह्म के ज्ञानस्वरूप में प्रीति और आनंदस्वरूप में विश्रांति पाइये । जो अभी अपना आपा है, जहाँ से 'मैं-मैं' फुर रहा है वही अनंत ब्रह्माण्डों का अधिष्ठान है । अपने शरीर, मन, बुद्धि का अधिष्ठान भी वही-का-वही है । ॐ शांति... ॐ आनंद... सरल, सहज और सर्वोपरि परमात्मा में आइये । ❐

श्रीकृष्ण-अवतार का उद्देश्य

- पूज्य बापूजी

(श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी : १४ अगस्त)

मनुष्य-जीवन कितना ऊँचा है कि वह भगवान का भी अवतरण करा सकता है । अपने अंतःकरण में भगवान का अवतरण, अपनी बुद्धि में भगवान का अवतरण, अपने 'स्व' में भगवान का अवतरण हो गया तो फिर साक्षात्कार हो जाता है । निष्काम कर्म करते हो तो कर्म में भगवान का अवतरण होता है और कर्म स्वार्थ से जुड़ा हो तो मनुष्य दुःख पाता है ।

मनुष्य को दुःख तीन बातों से होता है - एक कंस से दुःख होता है, दूसरा काल से और तीसरा अज्ञान से दुःख होता है । मथुरा के लोग कंस से दुःखी थे, यह संसार ही मथुरा है । कंस के दो रूप हैं - एक तो खपे-खपे (और चाहिए, और चाहिए...) में खप जाय और दूसरे का चाहे कुछ भी हो जाय, उधर ध्यान न दे । यह कंस का स्थूल रूप है । दूसरा है कंस का सूक्ष्म रूप - ईश्वर की चीजों में अपनी मालिकी करके अपने अहं की विशेषता मानना कि 'मैं धनवान हूँ, मैं सत्तावान हूँ, मेरा राज्य है, मेरा वैभव है, मुझसे बड़ा कोई नहीं... ।' यह अंदर में भाव होता है ।

तीन भेद होते हैं - समय, वस्तु और स्थान के कारण दुःख होना । जैसे - यह कलियुग का काल है; इस काल में अमुक-अमुक समय में, अमुक-अमुक वस्तु से, अमुक-अमुक स्थान में व्यक्ति दुःख पाता है । दूषित काल है, प्रदोषकाल है तो उस काल में व्यक्ति पीड़ा पाता है, दुःख पाता है । शराब का अड्डा है, वेश्यागृह है, झगड़ा करनेवाले लोगों का संग है तो उस स्थान के कारण किसीको दुःख होता है । वस्तु से भी व्यक्ति दुःख पाता है । जैसे - शराब है, कबाब है और दूसरे हानि पहुँचानेवाले व्यसन आदि । फास्टफूड खा लिया तो आगे चलके बीमारी होगी । खूब नाचे फिर खड़े-खड़े ठंडा पिया तो आगे चलकर पैरों की पिण्डलियाँ दर्द करेंगी । यह काल का दुःख है कि अभी तो कर लिया लेकिन समय पाकर दुःख होगा । अभी तो निंदा कर ली, सुन ली लेकिन समय पाकर अशांति होगी, दुःख होगा, नरकों में पड़ेंगे, आपस में लड़ेंगे, उपद्रव होगा ।

तीसरा होता है अज्ञानजन्य दुःख । अज्ञान क्या है ? हम जो हैं उसको हम नहीं जानते और हम जो नहीं हैं उसको हम में मानते हैं तो

अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः ।

'अज्ञान के द्वारा ज्ञान ढका हुआ है उसीसे सब अज्ञानी मनुष्य मोहित हो रहे हैं ।' **(गीता : ५.१५)**

कितने बचपन आये, कितनी बार मृत्यु आयी, कितने जन्म आये और गये फिर भी हम हैं... तो हम नित्य हैं, चैतन्य हैं, शाश्वत हैं, अमर हैं । इस बात को न जानना यह अज्ञान है । इससे उलटा ज्ञान हो गया इसलिए हम जिस शरीर में आये उसीके कर्म और व्यवहार को सच्चा मानने लगे ।

तो कंस से, काल से और अज्ञान से छुटकारा - यह है श्रीकृष्ण-अवतार का उद्देश्य । श्रीकृष्ण कंस को तो मारते हैं, काल से अपने भक्तों की रक्षा करते हैं और ज्ञान से अज्ञान हरके भक्तों को ब्रह्मज्ञान देते हैं । यह श्रीकृष्ण-अवतार है ।

श्रीकृष्ण-अवतार मतलब तुम्हारे हृदय में भगवदावतार कैसे हो ? यह जन्माष्टमी का पर्व सत्संग के द्वारा तुम्हारे हृदय में श्रीकृष्ण-अवतार कराना चाहता है, तुम्हारा कितना सौभाग्य है ! श्रीकृष्ण नाम का अर्थ क्या है ? **कर्षति आकर्षति इति कृष्णः ।** जो कर्षित कर दे, आकर्षित कर दे, आनंदित कर दे उसको कृष्ण बोलते हैं । आप सुख और आनंद से कर्षित होते हैं और जहाँ-जहाँ, जिस-जिस में सुख होता है, उस-उस

अवस्था से आप आकर्षित होते हैं और उस-उस परिस्थिति से आप आनंदित होते हैं। श्रीकृष्ण का यह बाह्य अवतार कर्षित-आकर्षित, आनंदित करनेवाला है और श्रीकृष्ण का वास्तविक स्वरूप सत्संग से समझ में आता है। श्रीकृष्ण बंसी बजाते हैं तो सब कर्षित-आकर्षित होते हैं और फिर कुछ लीला करते हैं तो आनंदित होते हैं। ऐसा हो-होके बदल जाता है लेकिन श्रीकृष्ण का तात्त्विक अवतार अर्जुन के अंतःकरण में हुआ तो अर्जुन सदा के लिए पार हो गये। जिस-जिस गोपी के अंतःकरण में श्रीकृष्ण का तात्त्विक अवतरण हुआ, वे सब सदा के लिए पार हो गयीं।

तो हम कंस से फँसे हैं, काल से फँसे हैं, अज्ञान से फँसे हैं और इनको निवृत्त करने के लिए श्रीकृष्ण-अवतार चाहिए।

'पातंजल योगदर्शन' के 'व्यासभाष्य' में व्यासजी ने लिखा है :

नानुपहत्य भूतानि उपभोगः सम्भवतीति ।

'प्राणियों को हानि पहुँचाये बिना उपभोग कभी संभव नहीं हो सकता।' **(यो.द.सा.प : १५)**

'दूसरों का जो होनेवाला हो, हो लेकिन मेरे को भोग मिले, यश मिले, पद मिले, सब कुछ मैं-ही-मैं हो जाऊँ' - इसी वृत्ति का नाम है कंस। यहाँ तक कि ग्वाल-गोपियाँ अपने बच्चों को मक्खन नहीं दे सकते थे, कंस का इतना आतंक था। अपने भोग के लिए, अपनी सत्ता के लिए, अपनी अहंता के लिए कुछ भी करने को तैयार - वह है कंस और सभीके मंगल के लिए, माधुर्य जगाने के लिए चाहे कुछ भी करना पड़े, उसके लिए जो हमेशा तैयार है - उसका नाम है कृष्ण। **'बहुजनहिताय-बहुजनसुखाय'** व्यापक जनसमाज के विकास के लिए चाहे नंद बाबा का बेटा बनना पड़े, चाहे वसुदेव का बेटा बनना पड़े, चाहे दशरथनंदन बनना पड़े, चाहे किसी संतरूप में किसी माई का और बाबा का बेटा कहलाना पड़े, चाहे निंदा हो, चाहे आरोप लगें फिर भी लोक-मांगल्य करता रहे - यह संत-अवतरण है।

तो अब क्या करना है ? अपना उद्देश्य बना लें कि हमारे अंतःकरण में श्रीकृष्ण-अवतार हो, भगवदावतार हो, भगवद्ज्ञान का प्रकाश हो, भगवत्सुख का प्रकाश हो तो भगवदाकार वृत्ति पैदा होगी। जैसे घटाकार वृत्ति से घट दिखता है, ऐसे ही भगवदाकार वृत्ति बनेगी, ब्रह्माकार वृत्ति बनेगी तब ब्रह्म-परमात्मा का साक्षात्कार होगा। तो भगवद्ज्ञान, भगवत्प्रेम और भगवद्विश्रांति सारे दुःखों को सदा के लिए उखाड़के रख देगी। इसलिए ब्रह्मज्ञान का सत्संग सुनना चाहिए, उसको निदिध्यासन करके विश्रांति पानी चाहिए। ❑

गणेश चतुर्थी या कलंकी चौथ

गणेश चतुर्थी को 'कलंकी चौथ' भी कहते हैं। इस तिथि को चाँद देखना वर्जित है। **इस वर्ष गणेश चतुर्थी (२३ अगस्त) के दिन चन्द्रास्त रात्रि ९ बजे होगा। इस समय तक चन्द्रदर्शन निषिद्ध है।**

यदि भूल से भी चौथ का चंद्रमा दिख जाय तो 'श्रीमद्भागवत' के १०वें स्कंध के ५६-५७वें अध्याय में दी गयी 'स्यमंतक मणि की चोरी' की कथा का आदरपूर्वक श्रवण करना चाहिए। भाद्रपद शुक्ल तृतीया या पंचमी के चंद्रमा के दर्शन करने चाहिए, इससे चौथ को दर्शन हो गये हों तो उसका ज्यादा खतरा नहीं होगा।

अनिच्छा से चन्द्रदर्शन हो जाय तो...

निम्नलिखित मंत्र से पवित्र किया हुआ जल पीना चाहिए। मंत्र का २१, ५४ या १०८ बार जप करें। मंत्र इस प्रकार है :

सिंहः प्रसेनमवधीत् सिंहो जाम्बवता हतः ।
सुकुमारक मा रोदीस्तव ह्येष स्यमन्तकः ॥

'सुंदर, सलोने कुमार ! इस मणि के लिए सिंह ने प्रसेन को मारा है और जाम्बवान ने उस सिंह का संहार किया है, अतः तुम रोओ मत। अब इस स्यमंतक मणि पर तुम्हारा ही अधिकार है।' **(ब्रह्मवैवर्त पुराण, अध्याय : ७८)**

वाह ! क्या समर्पण है

सूफी संतों में रबिया एक संत हो गयीं । वे बहुत ही सादगी की जिंदगी बिताती थीं और हर घड़ी अल्लाह का नाम उनकी जुबान पर रहता था । उनकी कुटिया पर साधु-संतों का आना-जाना लगा रहता था ।

एक दिन एक फकीर आये तो रबिया ने आग्रहपूर्वक उन्हें अपनी कुटिया में ही रोक लिया और उनकी खूब सेवा की । फकीर ने देखा कि रबिया ने रात को अपने आराम करने के लिए अकेला एक टाट बिछाया है और तकिये की जगह एक ईंट रखी है । अल्लाह का नाम लेती-लेती वह सो गयी । फकीर चकित रह गये । इतने ऊँचे दर्जे की संत और इतनी कठोर जिंदगी ! उन्हें बड़ा दुःख हुआ ।

सवेरे उठकर उन्होंने रबिया से कहा : ''आप इतनी तकलीफ क्यों उठाती हैं ?''

''कैसी तकलीफ ?'' रबिया ने पूछा ।

फकीर ने टाट व ईंटवाली बात बतायी और कहा : ''अगर आपकी इजाजत हो तो मैं किसी भक्त से कहकर आपके लिए कुछ सामान भिजवा दूँ ।'' रबिया ने कहा : ''धन्यवाद ! पर यह तो बताइये कि क्या मुझे, आपको और अमीरों को देनेवाला एक ही नहीं है ?''

फकीर ने कहा : ''हाँ, एक ही है ।''

''तब क्या वह हमें भूल गया है और दौलतमंदों की ही उसे याद है ? अगर उसे हमारी याद नहीं है तो हम याद क्यों दिलायें ? हमें यह हाल पसंद है क्योंकि उसे यह पसंद है ।''

फकीर आगे एक शब्द भी न बोल सके । उनके मुँह से सहसा निकल गया : ''वाह ! क्या समर्पण है ।''

न खुशी अच्छी है, न मलाल अच्छा है ।
यार जिसमें रख दे, वह हाल अच्छा है ।
हमारी न आरजू है, न जुस्तजू है ।
हम राजी हैं उसीमें, जिसमें तेरी रजा है ॥

भगवान की रजा है कि भगवान को जानकर मुक्त हो जाओ । भगवान की रजा है कि सब दुःखों से पार हो जाओ, मनुष्य-जन्म सफल कर लो, ईश्वर के 'मैं' के साथ अपना 'मैं' मिला दो, ईश्वर के चैतन्य के साथ अपनी चेतना मिला दो, ईश्वर के, गुरु के दैवी कार्यों के साथ अपने को जोड़ दो बस, हो गया काम !

जब अपना अहं होता है तभी आदमी दुःखी होता है । अपनी मूर्खता का नाम दुःख है, अपनी पकड़, नासमझी तथा निगुरेपने का नाम दुःख है । दुःख भगवान ने, माया ने या प्रकृति ने नहीं बनाया । दुःख का निर्माण होता है बेवकूफी से और बेवकूफी अहंकार से बनती है । दुःख का निमित्त तो हो लेकिन दुःख का संयोग आपके साथ न हो । सुख का निमित्त तो हो लेकिन सुख में आप लम्पट न बनें । सुख और दुःख दोनों का फायदा उठाओ । सुख-दुःख साधन हो गये तो आप साध्य में पहुँच गये । आपका साध्य क्या है ? जो सुख को भी जानता है, दुःख को भी जानता है । दुःख आये तो उसको देखो, सुख आये तो उसको देखो, चिंता आये तो उसको भी देखो, आप उनसे मिल जाते हैं । मिलो मत । यह कला आ गयी तो संसार में रहते हुए भी भगवान की प्राप्ति आसान हो जायेगी । अगर यह कला नहीं आयी तो बहुत प्रयत्न करने पर भी भगवान से तो दूर ही रहोगे । यह कला संतों के सत्संग से मिलती है । □

कर्मबंधन से बचाये रक्षाबंधन

(रक्षाबंधन : ५ अगस्त) – पूज्य बापूजी

यूँ तो रक्षाबंधन भाई-बहन का त्यौहार है, भाई-बहन के बीच प्रेमतंतु को निभाने का वचन देने का दिन है, अपने विकारों पर विजय पाने का, विकारों पर नियंत्रण पाने का दिन है एवं बहन के लिए अपने भाई के द्वारा संरक्षण पाने का दिन है लेकिन विशाल अर्थ में आज का दिन शुभ संकल्प करने का दिन है, परमात्मा के सान्निध्य का अनुभव करने का दिन है, ऋषियों को प्रणाम करने का दिन है। भाई तो हमारी लौकिक संपत्ति का रक्षण करते हैं किंतु संतजन व गुरुजन तो हमारी आध्यात्मिक संपदा का संरक्षण करके साधना की रक्षा करते हैं, कर्म में कुशलता अर्थात् अनासक्ति और समता में स्थिति कराकर कर्मबंधन से हमारी रक्षा करते हैं। उत्तम साधक अपने दिल की शांति और आनंद के अनुभव से ही गुरुओं को मानते हैं। साधक को जो आध्यात्मिक संस्कारों की संपदा मिली है वह कहीं बिखर न जाय, काम, क्रोध, लोभ आदि लुटेरे कहीं उसे लूट न लें इसलिए साधक गुरुओं से उसकी रक्षा चाहता है। उस रक्षा की याद ताजा करने का दिन है रक्षाबंधन पर्व।

रक्षाबंधन का पर्व विकारों में गिरते अड़ोस-पड़ोस के युवान-युवतियों के लिए एक व्रत है। पड़ोस के भैया की तरफ बुरी नजर जा रही है... कन्या बुद्धिमान थी, सोचा, 'मेरा मन धोखा न दे', इसलिए एक धागा ले आयी, राखी बाँध दी। भैया के मन में हुआ कि 'अरे, मैं भी तो बुरी नजर से देखता था। बहन ! तुमने मेरा कल्याण कर दिया।'

भाई-बहन का यह पवित्र बंधन युवक और युवतियों को विकारों की खाई में गिरने से बचाने में सक्षम है। भाई-बहन के निर्मल प्रेम के आगे काम शांत हो जाता है, क्रोध ठंडा हो जाता है और समता संयुक्त विचार उदय होने लगता है।

यह पर्व समाज के टूटे हुए मनों को जोड़ने का सुंदर अवसर है। इसके आगमन से कुटुंब में आपसी कलह समाप्त होने लगते हैं, दूरी मिटने लगती है, सामूहिक संकल्प-शक्ति साकार होने लगती है।

रक्षाबंधन हमें सिखाता है कि 'जो सांत्वना और स्नेह की आशा से जी रहे हैं, उनको सांत्वना और स्नेह दो। अगर बहन को रक्षा की आवश्यकता है तो उसकी रक्षा करो। अपने चित्त को चैतन्यस्वरूप ईश्वर में लगाओ।'

बहन राखी बाँधते-बाँधते 'मेरा भाई तेजस्वी हो, गृहस्थ-जीवन में रहकर भी संयमी, सदाचारी रहे, दैवी संपदा से संपन्न रहे।' इस प्रकार का संकल्प करके उसके दैवी गुणों की रक्षा की कामना करे। दूर देश में जो भाई हैं उनके लिए शुभकामना करके शुभ संकल्प तो जरूर भेजे।

कुंतीजी ने अपने पौत्र अभिमन्यु को राखी बाँधी थी। युद्ध के मैदान में जब तक यह रक्षाकवच था, तब तक कपटयुद्ध करनेवाले इतने सारे योद्धा भी अभिमन्यु को न मार सके। जब वह रक्षा-धागा टूटा उसके बाद वह मरा। ऐसे ही हमारे जो स्नेही हैं, उन्हें अपने विकाररूपी दैत्यों पर विजय पाने के लिए हमारी शुभकामना का कुछ-न-कुछ सहयोग मिले, इस हेतु रक्षाबंधन का त्यौहार है।

राखी बाँधते समय यह प्रार्थना करना कि 'हे परमेश्वर ! हे महेश्वर ! तू कृपा करना कि हमारे भाइयों, मित्रों, कुटुंबियों, पड़ोसियों, देशवासियों का मन तुझमें लग जाय ।' इस दिन ब्राह्मण जनेऊ बदलते हैं । भक्ति, ज्ञान और वैराग्य को नूतन बनाने का संकल्प करते हैं । तुम्हारे जीवन में ज्ञान, भक्ति, वैराग्य नूतन रहें । तुम्हारे जीवन में शौर्य, उदारता, श्रद्धा, भक्ति, धैर्य, क्षमा, शुद्धि आदि सद्गुणों का, दैवी संपदा का विकास हो ।

इस दिन गर्भिणी स्त्री के दायें हाथ पर कुमकुम-चावल की पोटली बाँधी जाती है। एक्युप्रेशर की दृष्टि से देखा जाय तो आदमी चिंतातुर, भयभीत होता है तो दिल की धड़कनें बढ़ जाती हैं । उनको नियंत्रित करने के लिए दायें हाथ पर बँधा कलावा बड़ा काम करता है । उसमें शुभकामना भी है और एक्युप्रेशर का काम भी है ।

अपने मन को मना लो कि 'जो रक्षा के योग्य हैं हम उनकी सेवा करेंगे । जिनसे रक्षा लेनी है उनको मन-ही-मन राखी बाँध देंगे कि हम तो चाहे किसीकी रक्षा में अपना हाथ-पैर चलायेंगे लेकिन हे परमेश्वर ! हे इष्टदेव ! हे गुरुदेव !! आप अपने शुभ संकल्प से हमारी आध्यात्मिक रक्षा करते रहना । हम कहीं संसार में फिसल जायें तो आप हमारे स्वप्नों में आया करना, सत्संग में हमें संकेत करना ।'

रक्षासूत्र वर्ष भर आयु, आरोग्य, स्वास्थ्य की रक्षा एवं सच्चरित्रता में मदद करता है । शांत होकर जब आप संकल्प करते हैं तो 'मैं' में से उठा हुआ स्फुरण अकाट्य हो जाता है । बाह्य जगत में बाह्य राखी की आवश्यकता होती है लेकिन भीतर के जगत में तो मन-ही-मन नाते जुड़ जाते हैं ।

मनुष्य जब कर्ता बनकर कर्म करता है, तब बंधन में फँसता है । अच्छा करेगा तो सोने की जंजीर से और बुरे कर्म करेगा तो लोहे की जंजीर से बँधेगा । जंजीर चाहे सोने की हो या लोहे की, जंजीर तो जंजीर ही है । जब तक सच्ची समझ नहीं आती है, तब तक बंधन नहीं छूटता है । जब सद्गुरुओं के, सच्चे संतों के संग से सच्ची समझ मिल जाती है, सच्चा ज्ञान दृढ़ हो जाता है तब उसके पहले के कर्म खत्म होते जाते हैं और नये कर्म बंधनरूप नहीं बनते हैं ।

किसी व्यक्ति को नीचा दिखाने के लिए कर्म करते हैं, अहंकार सजाने के लिए कर्म करते हैं, वासनापूर्ति के लिए कर्म करते हैं तो कर्म बंधनरूप हो जाता है । लेकिन भगवत्प्रीति के लिए, भगवद्-आनंद उभारने के लिए, अपना असली सुख, आत्मप्रकाश जगमगाने के लिए शुभ संकल्प द्वारा **'परस्परं भावयन्तु'** की सद्भावना को पुष्ट करने के लिए रक्षाबंधन जैसे उत्सवों के माध्यम से निष्काम कर्म करते हैं तो वह कर्म कर्ता को बंधन से छुड़ानेवाला हो जाता है, दिव्य हो जाता है । ❑

✲ सेवा-प्रेम-त्याग ही मनुष्य के विकास का मूल मंत्र है । अगर यह मंत्र आपको जँच जाय तो सभी के प्रति सद्भाव रखो और शरीर से किसी-न-किसी व्यक्ति को बिना किसी मतलब के यथाशक्ति सहयोग देते रहो । यह नहीं कि 'जब मेरी बात मानेंगे तब मैं सेवा करूँगा । अगर प्रबन्धक मेरी बात नहीं मानते हैं तो मैं सेवा नहीं करूँगा ।'

भाई ! तब तो तुम सेवा नहीं कर पाओगे । तब तो तुम अपनी बात मनवाकर अपने अहं की पूजा ही करोगे ।

✲ नित्य प्रसन्नमुख रहो । मुख को कभी मलिन मत करो । निश्चय कर लो कि आपके लिये शोक ने इस जगत में जन्म ही नहीं लिया है । आनंदस्वरूप में चिंता को स्थान ही कहाँ है ?

(आश्रम से प्रकाशित पुस्तक 'जीवन रसायन' से)

सर्प में भी भगवद्बुद्धि की प्रेरणा : नागपंचमी

नागपंचमी का त्यौहार श्रावण शुक्ल पंचमी को मनाया जाता है । इस दिन नागों की पूजा की जाती है और उनकी प्रसन्नता के लिए बाँबी के पास दुग्धादि पदार्थ रखने का शास्त्रों में विधान है । सर्पदंश के भय से बचने के लिए लोग नागों का पूजन करते हैं, सर्प में परमात्म-भाव से भी पूजन करते हैं ।

जब से सृष्टि का इतिहास हमारे सामने आता है तब से ही नागों की गौरव-गरिमा दिग्दिगंत में व्याप्त दिखायी देती है । 'वराह पुराण' में आता है कि आज के दिन ब्रह्माजी ने अपने प्रसाद से शेषनाग को विभूषित किया था और उनकी पृथ्वी धारण करने की सेवा के लिए जनता ने उनका अभिनंदन किया था । उसी समय से यह त्यौहार नाग जाति के प्रति श्रद्धा का प्रतीक बना है ।

मनुष्य के अलावा जितने भी प्राणी हैं, उन्हें भी जीने का हक है । नागपंचमी के उत्सव से सर्प में भी भगवान को देखने की प्रेरणा मिलती है । कैसी सुंदर व्यवस्था है हमारे सनातन धर्म में !

भारतीय संस्कृति में नागों को प्रारंभ से ही एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है । भगवान विष्णु उन्हें शय्या बनाकर विश्व-भरण का कार्य सम्पादन करते हैं। अमृतलाभ के लिए किये जानेवाले समुद्रमंथन जैसे महान कार्य में रस्सी का काम चलाने के लिए नागराज वासुकि द्वारा अपना शरीर समर्पित करना यह तो जगप्रसिद्ध है । भगवान शंकर तो 'नागेन्द्रहार' कहलाते हैं । वेदों की अनेक ऋचाओं में नागों की स्तुति एवं पूजा का विधान पाया गया है । भारत का कोई प्रांत, कोई कोना ऐसा नहीं है जिसमें नागों की पूजा न होती हो ।

नाग-पूजा किसलिए की जाती है ?

नागों के विषय में यह आम धारणा है कि यह एक बड़ा भयंकर जीव है, जो देखते ही मनुष्य को काट खाता है परंतु यह धारणा सत्य नहीं है । सर्पों की बहुत कम प्रजातियाँ जहरी होती हैं और जहरी सर्प भी प्रायः तभी काटते हैं जब उन्हें छेड़ा जाता है या दबाया जाता है । मनुष्य यदि जंगल, खेत में भलीभाँति देखकर चले तो कोई कारण नहीं है कि सर्प उसे काटे ही । इन भ्रांत धारणाओं का हमारे हृदय पर ऐसा बुरा असर पड़ा है कि हमने उसे मनुष्य का जन्मजात शत्रु समझ लिया है और ज्यों ही हम उसे देखते हैं त्यों ही मन में भय का संचार हो जाता है और तुरंत ही ध्यान जाता है कि इसे मारने के लिए हमारे पास कोई डंडा वगैरह है या नहीं । ज्यों ही हमारे मन में इसके विनाश की भावना उठी कि हमारे श्वासोच्छ्वास के रास्ते यही भावना उसके हृदय में भी उत्पन्न हो जाती है । फलतः हमारी दुर्भावना ही उसे हिंसक बना देती है ।

नाग-पूजा द्वारा सर्पों के प्रति बनी इस दुर्भावना और भ्रान्ति का निराकरण किया जाता है । इस दिन नागों को दूध, सुगंधित पुष्प चढ़ाकर श्रद्धा-भक्ति से उनकी देवता के रूप में पूजा की जाती है । स्तुति के रूप में उनके गुणों का वर्णन सुनकर हमारे हृदय में उनके प्रति विद्यमान दुर्भावना क्षीण हो जाती है, जिससे हम उन्हें शत्रु नहीं अपितु ईश्वरीय सृष्टि का अपने जैसा ही प्राणी समझने लगते हैं । तब हमारे मन की वह अधीरता और घबराहट जो उसे देखने के साथ ही पैदा होती थी, सर्वथा शांत हो जाती है । लोगों के मन से उस भय-भावना का निराकरण और सद्भाव की जागृति नागपंचमी का उद्देश्य हो सकता है । भय से हमारे शरीर में हानिकारक द्रव्य बनते हैं और सद्भाव से हितकारी भगवत्प्रसादजा मति देनेवाले रसायन बनते हैं । नागों के पूजन में कितना उदार दृष्टिकोण छिपा है ! कितना अद्भुत मनोविज्ञान है !

सिंधी जगत में एक कथा प्रचलित है :

किसी निर्धन कन्या को धनप्राप्ति की खूब

लालसा थी। एक दिन उसे स्वप्न में सर्पदेवता के दर्शन हुए और उन्होंने कहा : ''फलानी जगह पर धन गड़ा हुआ है, तू वहाँ आकर ले जा। मुझे कोई बहन नहीं है और तुझे कोई भाई नहीं है तो आज से तू मेरी बहन और मैं तेरा भाई।''

सर्पदेवता द्वारा बतायी गयी जगह पर उसे बहुत धन मिला और वह खूब धनवान हो गयी। फिर तो वह प्रतिदिन अपने सर्प भाई के पीने के लिए दूध रखती। सर्पदेवता आकर दूध में पहले अपनी पूँछ डालते और बाद में दूध पीते। एक दिन जल्दबाजी में बहन ने दूध ठंडा किये बिना ही रख दिया। सर्प ने आकर ज्यों ही अपनी पूँछ डाली तो गर्म दूध से उसकी पूँछ जल गयी। सर्प को विचार आया कि 'मैंने बहन को इतना धन दिया किंतु वह दूध का कटोरा भी ठीक से नहीं देती है। अब उसे सीख देनी पड़ेगी।'

बहन श्रावण महीने में अपने कुटुंबियों के साथ कोई खेल खेल रही थी। सर्प को हुआ कि 'इसके पति को यमपुरी पहुँचा दूँ तो इसे पता चले कि लापरवाही का बदला कैसा होता है।'

सर्पदेवता उसके पति के जूतों के करीब छिप गये। इतने में तो खेल-खेल में कुछ भूल हो गयी। किसी बहन ने कहा : ''यहाँ चार आने नहीं रखे थे।''

सर्प की बहन ने कहा : ''सत्य कहती हूँ कि यहीं रखे थे। मैं अपने प्यारे भाई सर्पदेवता की सौगंध खाकर कहती हूँ।''

यह सुनकर सर्प को हुआ कि इसे मेरे लिए इतना प्रेम है ! जिस तरह लोग भगवान अथवा देवता की सौगंध खाते हैं, वैसे ही यह मेरी सौगंध खाती है ! अतः वे प्रकट होकर बोले : ''तूने तो भूल की थी पर मैं और भी बड़ी भूल करने जा रहा था लेकिन मेरे प्रति तेरा जो प्रेम है उसे देखते हुए मैं तुझे वरदान देता हूँ कि आज के दिन जो भी बहन मुझे याद करेगी उसका पति अकाल मृत्यु और सर्पदंश का शिकार नहीं होगा।'' तब से बहनें आज के दिन व्रत तथा नागदेवता का पूजन करती हैं।

नागपंचमी मनाने का कारण चाहे जो भी हो किंतु यह बात तो निश्चित है कि हमारी संस्कृति हिंसक प्राणियों के प्रति भी वैरवृत्ति न रखने की, उनके प्रति सद्भाव जगाने की और उन्हें अभयदान देने की ओर संकेत करती है। नागों को दूध पिलाने की एवं उनमें भी अपने परमात्मा को निहारने की दृष्टि देना, यह सनातन धर्म की विशेषता है। भगवान शिव के गले में व भगवान गणेश की कमर में सर्प एवं भगवान विष्णु की शय्या के शेषनाग इसी बात का प्रमाण हैं कि अगर कोई नागदेव को भी अपने ही आत्मदेव की सत्ता से चलनेवाला मानकर प्रेम से निहारता है तो चाहे कैसा भी भयंकर विषधर हो उसके सामने अपना विषैला स्वभाव छोड़कर पालतू प्राणी की तरह हो जाता है। मनुष्य के अलावा जितने भी प्राणी हैं, उन्हें भी जीने का हक है; फिर भले उनके संस्कार उनकी प्रकृति के अनुरूप हों। प्रकृति और संस्कार में तो परिवर्तन होता है किंतु इनका जो साक्षी है उसे निहारकर जो अपने आत्मा-परमात्मा में जाग जाता है वह शिवस्वरूप हो जाता है, निर्भय स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है। जो हमें डँसकर मार सकता है, ऐसे सर्प में भी भगवान को देखने की प्रेरणा इस उत्सव से मिलती है। कैसी सुंदर व्यवस्था है हमारे सनातन धर्म में, जिससे मौत जीवन में, द्वेष प्रेम में और मनमुखता मुक्तिदायी विचारों में बदल सकती है। ❑

भगवद्भक्त वृत्रासुर

एक बार असुरों ने चढ़ाई कर दी और देवता हार गये। ब्रह्माजी की सम्मति से देवताओं ने त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप को पुरोहित बनाया। विश्वरूप को 'नारायण कवच' का ज्ञान था। उसके प्रभाव से बलवान होकर इन्द्र ने असुरों को पराजित किया किंतु विश्वरूप की माता असुर-कन्या थीं। इन्द्र को संदेह हुआ कि विश्वरूप प्रत्यक्ष तो हमारी सहायता करते हैं पर गुप्तरूप से असुरों को भी हविर्भाग पहुँचाते हैं। इस संदेह से इन्द्र ने विश्वरूप को मार डाला। पुत्र की मृत्यु से दुःखी त्वष्टा ने इन्द्र से बदला लेने के लिए उसका शत्रु उत्पन्न हो, ऐसा संकल्प करके अभिचार यज्ञ किया। उस यज्ञ से अत्यन्त भयंकर वृत्र का जन्म हुआ। यह वृत्रासुर पूर्वजन्म में भगवान के 'अनंत' स्वरूप का परम भक्त चित्रकेतु नामक राजा था। पार्वतीजी के शाप से उसे यह असुर-देह मिली थी। असुर होने पर भी पूर्वजन्म के अभ्यास से वृत्र की भगवद्भक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती ही गयी।

"दानवेन्द्र वृत्रासुर ! तुम तो सिद्धावस्था को प्राप्त हो गये हो। आश्चर्य की बात है कि रजोगुणी स्वभाव होने पर भी तुमने अपने चित्त को दृढ़ता से सत्त्वमूर्ति भगवान वासुदेव में लगा रखा है।"

साठ हजार वर्ष कठोर तप करके वृत्रासुर ने अमित शक्ति प्राप्त की। वह तीनों लोकों को जीतकर उनके ऐश्वर्य का उपभोग करने लगा। वृत्र असुर था, उसका शरीर असुर-जैसा था किंतु उसका हृदय निष्पाप था। उसमें वैराग्य था और भगवान की निर्मल-निष्काम प्रेमरूपा भक्ति थी। भोगों की नश्वरता वह जानता था। एक बार संयोगवश वह देवताओं से हार गया। तब असुरों के आचार्य शुक्र उसके पास आये। उस समय आचार्य को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वृत्र के मुख पर राज्यच्युत होने का तथा पराजय का कोई खेद नहीं है। उन्होंने इसका कारण पूछा। उस महान असुर ने कहा : ''भगवन् ! सत्य और तप के प्रभाव से मैं जीवों के जन्म-मृत्यु तथा सुख-दुःख के रहस्य को जान गया हूँ। इससे मुझे किसी भी अवस्था में हर्ष या शोक नहीं होता। भगवान ने कृपा करके मुझे अपने तत्त्व का ज्ञान करा दिया है, इससे जीवों के आवागमन तथा भोगों के मिलने-न मिलने में मुझे विकार नहीं होता। मैंने घोर तप करके ऐश्वर्य पाया और फिर अपने कर्मों से ही उसका नाश कर दिया। मुझे उस ऐश्वर्य के जाने का तनिक भी शोक नहीं है। इन्द्र से युद्ध करते समय मैंने अपने स्वामी श्रीहरि के दर्शन किये थे। मैं आपसे और कोई इच्छा न करके यही प्रार्थना करता हूँ कि किस कर्म से, किस प्रकार भगवान की प्राप्ति हो, यह आप मुझे उपदेश करें।''

शुक्राचार्य ने वृत्र की भगवद्भक्ति की प्रशंसा की। उसी समय सनकादि कुमार वहाँ घूमते हुए आ पहुँचे। शुक्राचार्य तथा वृत्र ने उनका आदरपूर्वक पूजन किया। शुक्राचार्य के पूछने पर सनत्कुमारजी ने कहा : ''जो भगवान संपूर्ण विश्व में स्थित हैं, जो सृष्टि, पालन तथा संहार के परम कारण हैं, वे श्रीनारायण शास्त्रज्ञान, उग्र तप और यज्ञ के द्वारा नहीं मिलते। मनसहित सब इन्द्रियों को सांसारिक विषयों से हटाकर उनमें लगाने से ही वे प्राप्त होते हैं। जो निरंतर दृढ़तर प्रयास से निष्कामभावपूर्वक भगवान को प्रसन्न करने के लिए कर्तव्यकर्म करते हैं और शम-दम आदि साधनों को करके चित्तशुद्धि प्राप्त कर लेते हैं, वे ही इस आवागमन-चक्र से छूटते हैं। प्रबल प्रयत्न करनेवाला पुरुष एक जन्म में भी हृदय को शुद्ध कर लेता है। बुद्धि के विषयासक्ति आदि दोष बार-बार के महान प्रयत्न से नष्ट हो जाते हैं। निर्मल-हृदय पुरुष ज्ञान-दृष्टि से सबको नारायणस्वरूप देखते हैं। इस समदृष्टि से वे

ब्रह्मभाव को प्राप्त हो जाते हैं । जो इन्द्रियों को संयत करके सुख-दुःख में सम रहते हैं, जो निर्मल मन से परम पवित्र भगवद्गति को जानना चाहते हैं, वे ब्रह्म-साक्षात्कार करके दुर्लभ मोक्षस्वरूप अविनाशी परब्रह्म को प्राप्त कर लेते हैं ।''

वृत्रासुर अब दृढ़निश्चय से सर्वत्र, सबमें भगवान का अनुभव करने लगा । इन्द्रादि देवताओं ने उसे मारने का बहुत प्रयत्न किया पर वे सफल न हुए । मारनेवालों के तेज को वह हरण कर लेता था और अस्त्र-शस्त्र निगल जाता था । तब देवताओं ने भगवान की शरण ली और भगवान की बहुत ही ज्ञानमयी स्तुति की । भगवान ने प्रकट होकर कहा : ''देवताओ ! मैं तुम पर प्रसन्न हूँ । मेरे प्रसन्न होने पर फिर जीव को कुछ भी दुर्लभ नहीं रहता किंतु जिनकी बुद्धि अनन्यभाव से मुझमें लगी है, जो मेरे तत्त्व को जानते हैं, वे मुझे छोड़कर और कुछ नहीं चाहते ।''

दयामय भगवान देवताओं पर प्रसन्न थे, फिर भी वे भगवान को सर्वदा के लिए पाने की प्रार्थना नहीं कर रहे थे । अपार कृपासिंधु प्रभु ने देख लिया कि ये विषयाभिलाषी ही हैं । प्रभु को अपने परम भक्त वृत्र को असुर-शरीर से मुक्त करके अपने पास बुलाना था, अतः उन्होंने इन्द्र से कहा : ''अच्छा, तुम महर्षि दधीचि के पास जाकर उनसे उनका शरीर माँग लो । उनकी हड्डियों से बने वज्र के द्वारा तुम असुरराज वृत्र को मार सकोगे ।''

इन्द्र के माँगने पर महर्षि दधीचि ने योग द्वारा शरीर छोड़ दिया । विश्वकर्मा ने उनकी हड्डियों से वज्र बनाया । वज्र लेकर ऐरावत पर सवार हो बड़ी भारी सेना के साथ इन्द्र ने वृत्र पर आक्रमण किया । इस प्रकार इन्द्र को अपने सामने देखकर वह महामना असुर तनिक भी घबराया या डरा नहीं । वह निर्भय, निश्चल हँसता हुआ युद्ध करने लगा । उसने ऐरावत पर एक गदा मारी तो ऐरावत रक्त-वमन करता अट्ठाईस हाथ पीछे चला गया । अपने शत्रु को ऐसे संकट में पड़ा देख वृत्र उलटा आश्वासन और प्रोत्साहन देते हुए बोला : ''इन्द्र ! घबराओ मत ! अपने इस अमोघ वज्र से मुझे मारो । भगवान की सच्ची कृपा मुझ पर है । मैं अपने मन को भगवान के चरणकमलों में लगाकर तुम्हारे वज्र द्वारा इस शरीर के बंधन से छूटकर योगियों के लिए भी दुष्प्राप्य परम धाम को प्राप्त कर लूँगा । इन्द्र ! जिनकी बुद्धि भगवान में लगी है, उन श्रीहरि के भक्तों को स्वर्ग, पृथ्वी या पाताल की संपत्ति भगवान कभी नहीं देते क्योंकि ये संपत्तियाँ राग-द्वेष, उद्वेग-आवेग, आधि-व्याधि, मद-मोह, अभिमान-क्षोभ, व्यसन-विवाद, परिश्रम-क्लेश आदि को ही देती हैं । अपने पर निर्भर अबोध शिशु को माता-पिता कभी अपने हाथों क्या विष दे सकते हैं ? मेरे स्वामी दयामय हैं, वे अपने प्रियजन को विषयरूप विष न देकर उसके अर्थ-धर्म-काम संबंधी प्रयत्न का ही नाश कर देते हैं । मुझ पर भगवान की कृपा है, इसीसे तो मेरे ऐश्वर्य को उन्होंने छीन लिया और तुम्हें वज्र देकर भेजा कि तुम इस शरीर से मुझे छुड़ाकर उनके चरणों में पहुँचा दो । परंतु इन्द्र ! तुम्हारा दुर्भाग्य है । तुम पर प्रभु की कृपा नहीं है, इसीसे अर्थ, धर्म, काम के प्रयत्न में तुम लगे हो । भगवान की कृपा का रहस्य तो उनके निष्किंचन भक्त ही जानते हैं ।''

असुरराज वृत्र भगवान की कृपा का अनुभव करके भावमग्न हो गया । वह भगवान को प्रत्यक्ष देखता हुआ-सा उनसे प्रार्थना करने लगा : ''हरे ! मैं मरकर भी तुम्हारे ही चरणों के आश्रय में रहूँ, तुम्हारा ही दास बनूँ । मेरा मन तुम्हारे गुणों का सदा स्मरण करता रहे, मेरी वाणी तुम्हारे ही गुण-कीर्तन में लगी रहे, मेरा शरीर तुम्हारी सेवा करता रहे । मेरे समर्थ स्वामी ! मुझे स्वर्ग, ब्रह्मा का पद, सार्वभौम राज्य, पाताल का स्वामित्व, योगसिद्धि और मोक्ष भी नहीं चाहिए । मैं तो चाहता हूँ कि पक्षियों के जिन बच्चों के अभी पंख न निकले हों, वे जैसे भोजन लाने गयी हुई अपनी माता के आने की उत्सुकता से प्रतीक्षा करते हैं, जैसे रस्सी से बँधे भूख से

ब्रह्मभाव को प्राप्त हो जाते हैं । जो इन्द्रियों को संयत करके सुख-दुःख में सम रहते हैं, जो निर्मल मन से परम पवित्र भगवद्गति को जानना चाहते हैं, वे ब्रह्म-साक्षात्कार करके दुर्लभ मोक्षस्वरूप अविनाशी परब्रह्म को प्राप्त कर लेते हैं ।''

वृत्रासुर अब दृढ़निश्चय से सर्वत्र, सबमें भगवान का अनुभव करने लगा । इन्द्रादि देवताओं ने उसे मारने का बहुत प्रयत्न किया पर वे सफल न हुए । मारनेवालों के तेज को वह हरण कर लेता था और अस्त्र-शस्त्र निगल जाता था । तब देवताओं ने भगवान की शरण ली और भगवान की बहुत ही ज्ञानमयी स्तुति की । भगवान ने प्रकट होकर कहा : ''देवताओ ! मैं तुम पर प्रसन्न हूँ । मेरे प्रसन्न होने पर फिर जीव को कुछ भी दुर्लभ नहीं रहता किंतु जिनकी बुद्धि अनन्यभाव से मुझमें लगी है, जो मेरे तत्त्व को जानते हैं, वे मुझे छोड़कर और कुछ नहीं चाहते ।''

दयामय भगवान देवताओं पर प्रसन्न थे, फिर भी वे भगवान को सर्वदा के लिए पाने की प्रार्थना नहीं कर रहे थे । अपार कृपासिंधु प्रभु ने देख लिया कि ये विषयाभिलाषी ही हैं । प्रभु को अपने परम भक्त वृत्र को असुर-शरीर से मुक्त करके अपने पास बुलाना था, अतः उन्होंने इन्द्र से कहा : ''अच्छा, तुम महर्षि दधीचि के पास जाकर उनसे उनका शरीर माँग लो । उनकी हड्डियों से बने वज्र के द्वारा तुम असुरराज वृत्र को मार सकोगे ।''

इन्द्र के माँगने पर महर्षि दधीचि ने योग द्वारा शरीर छोड़ दिया । विश्वकर्मा ने उनकी हड्डियों से वज्र बनाया । वज्र लेकर ऐरावत पर सवार हो बड़ी भारी सेना के साथ इन्द्र ने वृत्र पर आक्रमण किया । इस प्रकार इन्द्र को अपने सामने देखकर वह महामना असुर तनिक भी घबराया या डरा नहीं । वह निर्भय, निश्चल हँसता हुआ युद्ध करने लगा । उसने ऐरावत पर एक गदा मारी तो ऐरावत रक्त-वमन करता अट्ठाईस हाथ पीछे चला गया । अपने शत्रु को ऐसे संकट में पड़ा देख वृत्र उलटा आश्वासन और प्रोत्साहन देते हुए बोला : ''इन्द्र ! घबराओ मत ! अपने इस अमोघ वज्र से मुझे मारो । भगवान की सच्ची कृपा मुझ पर है । मैं अपने मन को भगवान के चरणकमलों में लगाकर तुम्हारे वज्र द्वारा इस शरीर के बंधन से छूटकर योगियों के लिए भी दुष्प्राप्य परम धाम को प्राप्त कर लूँगा । इन्द्र ! जिनकी बुद्धि भगवान में लगी है, उन श्रीहरि के भक्तों को स्वर्ग, पृथ्वी या पाताल की संपत्ति भगवान कभी नहीं देते क्योंकि ये संपत्तियाँ राग-द्वेष, उद्वेग-आवेग, आधि-व्याधि, मद-मोह, अभिमान-क्षोभ, व्यसन-विवाद, परिश्रम-क्लेश आदि को ही देती हैं । अपने पर निर्भर अबोध शिशु को माता-पिता कभी अपने हाथों क्या विष दे सकते हैं ? मेरे स्वामी दयामय हैं, वे अपने प्रियजन को विषयरूप विष न देकर उसके अर्थ-धर्म-काम संबंधी प्रयत्न का ही नाश कर देते हैं । मुझ पर भगवान की कृपा है, इसीसे तो मेरे ऐश्वर्य को उन्होंने छीन लिया और तुम्हें वज्र देकर भेजा कि तुम इस शरीर से मुझे छुड़ाकर उनके चरणों में पहुँचा दो । परंतु इन्द्र ! तुम्हारा दुर्भाग्य है । तुम पर प्रभु की कृपा नहीं है, इसीसे अर्थ, धर्म, काम के प्रयत्न में तुम लगे हो । भगवान की कृपा का रहस्य तो उनके निष्किंचन भक्त ही जानते हैं ।''

असुरराज वृत्र भगवान की कृपा का अनुभव करके भावमग्न हो गया । वह भगवान को प्रत्यक्ष देखता हुआ-सा उनसे प्रार्थना करने लगा : ''हरे ! मैं मरकर भी तुम्हारे ही चरणों के आश्रय में रहूँ, तुम्हारा ही दास बनूँ । मेरा मन तुम्हारे गुणों का सदा स्मरण करता रहे, मेरी वाणी तुम्हारे ही गुण-कीर्तन में लगी रहे, मेरा शरीर तुम्हारी सेवा करता रहे । मेरे समर्थ स्वामी ! मुझे स्वर्ग, ब्रह्मा का पद, सार्वभौम राज्य, पाताल का स्वामित्व, योगसिद्धि और मोक्ष भी नहीं चाहिए । मैं तो चाहता हूँ कि पक्षियों के जिन बच्चों के अभी पंख न निकले हों, वे जैसे भोजन लाने गयी हुई अपनी माता के आने की उत्सुकता से प्रतीक्षा करते हैं, जैसे रस्सी से बँधे भूख से

व्याकुल छोटे बछड़े अपनी माता गौ का स्तन पीने के लिए उतावले रहते हैं, जैसे पतिव्रता स्त्री दूर-देश गये अपने पति का दर्शन पाने को उत्कंठित रहती है, वैसे ही आपके दर्शन के लिए मेरे प्राण व्याकुल रहें। इस संसारचक्र में मैं अपने कर्मों से जहाँ भी जाऊँ, वहीं आपके भक्तों से मेरी मित्रता हो और आपकी माया से जो यह देह-गेह, स्त्री-पुत्रादि में आसक्ति है, वह मेरे चित्त का स्पर्श न करे।''

प्रार्थना करते-करते वृत्र ध्यानमग्न हो गया। कुछ देर में सावधान होने पर वह इन्द्र की ओर त्रिशूल उठाकर दौड़ा। इन्द्र ने वज्र से वृत्र की वह दाहिनी भुजा काट दी। वृत्र ने फिर परिघ (भाला) उठाकर बायें हाथ से इन्द्र की ठोढ़ी पर मारा। इस आघात से इन्द्र के हाथ से वज्र गिर पड़ा और वे लज्जित हो गये। इन्द्र को लज्जित देख असुर वृत्र ने हँसकर कहा : ''शक्र ! यह खेद करने का समय नहीं है। वज्र हाथ से गिर गया तो क्या हुआ, उसे उठा लो और सावधानी से मुझ पर चलाओ। सभी जीव सर्वसमर्थ भगवान के वश में हैं। सबको सर्वत्र विजय नहीं मिलती। कठपुतली के समान सभी जीव भगवान के हाथ के यंत्र हैं। जो लोग नहीं जानते कि ईश्वर के अनुग्रह के बिना प्रकृति, महत्तत्त्व, अहंकार, पंचभूत, इंद्रियाँ, मन आदि कुछ नहीं कर सकते, वे लोग ही अज्ञानवश पराधीन देह को स्वाधीन मानते हैं। प्राणियों का उत्पत्ति-विनाश काल की प्रेरणा से ही होता है। जैसे प्रारब्ध एवं काल की प्रेरणा से बिना चाहे दुःख, अपयश, दरिद्रता मिलती है, उसी प्रकार भाग्य से ही लक्ष्मी, आयु, यश और ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं। जब ऐसी बात है, तब यश-अपयश, जय-पराजय, सुख-दुःख, जीवन-मरण के लिए कोई क्यों हर्ष-विषाद करे। सुख-दुःख तो गुणों के कार्य हैं और सत्त्व, रज, तम - ये तीनों गुण प्रकृति के हैं, आत्मा के नहीं। जो अपने को तीनों गुणों का साक्षी आत्मा जानता है, वह सुख-दुःख से लिप्त नहीं होता।''

इन्द्र ने वृत्रासुर के निष्कपट दिव्य भाव की प्रशंसा की : ''दानवेन्द्र ! तुम तो सिद्धावस्था को प्राप्त हो गये हो। तुम सबको मोहित करनेवाली भगवान की माया से पार हो चुके हो। आश्चर्य की बात है कि रजोगुणी स्वभाव होने पर भी तुमने अपने चित्त को दृढ़ता से सत्त्वमूर्ति भगवान वासुदेव में लगा रखा है। तुम्हारा स्वर्गादि के भोगों में अनासक्त होना ठीक ही है। आनंदसिंधु भगवान की भक्ति के अमृतसागर में जो विहार कर रहा है, उसे स्वर्गादि सुख जैसे नन्हे गड्ढों में भरे खारे गंदे जल से प्रयोजन भी क्या !''

इसके बाद वृत्र ने मुख फैलाकर ऐरावतसहित इन्द्र को ऐसे निगल लिया, जैसे कोई बड़ा अजगर हाथी को निगल ले। निगले जाने पर भी इन्द्र 'नारायण कवच' के प्रभाव से मरे नहीं। वज्र से असुर का पेट फाड़कर वे निकल आये और फिर उसी वज्र से उन्होंने उस दानव का सिर काट डाला। वृत्र के शरीर से एक दिव्य ज्योति निकली, जो भगवान के स्वरूप में लीन हो गयी। ❐

भाव से भलाई

(पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

राजा रंतिदेव को अकाल के कारण कई दिन भूखे-प्यासे रहना पड़ा । मुश्किल से एक दिन उन्हें भोजन और पानी प्राप्त हुआ, इतने में एक ब्राह्मण अतिथि के रूप में आ गया । उन्होंने बड़ी श्रद्धा से ब्राह्मण को भोजन कराया । उसके बाद एक शूद्र अतिथि आया और बोला : ''मैं कई दिनों से भूखा हूँ, अकालग्रस्त हूँ ।'' बचे भोजन का आधा हिस्सा उसको दे दिया । फिर रंतिदेव भगवान को भोग लगायें, इतने में कुत्ते को लेकर एक और आदमी आया । बचा हुआ भोजन उसको दे दिया । इतने में एक चाण्डाल आया, बोला : ''प्राण अटक रहे हैं, भगवान के नाम पर पानी पिला दो ।''

अब राजा रंतिदेव के पास जो थोड़ा पानी बचा था, वह उन्होंने उस चाण्डाल और कुत्ते को दे दिया ।

इतने कष्ट के बाद रंतिदेव को मुश्किल से रूखा-सूखा भोजन और थोड़ा पानी मिला था, वह सब उन्होंने दूसरों को दे दिया । बाहर से तो शरीर को कष्ट हुआ लेकिन दूसरों का कष्ट मिटाने का जो आनंद आया, उससे रंतिदेव बहुत प्रसन्न हुए तो वह प्रसन्नस्वरूप, सत्-चित्-आनंदस्वरूप परमात्मा जो अंतरात्मा होकर बैठा है साकार होकर नारायण के रूप में प्रकट हो गया, बोला : ''रंतिदेव ! मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ, क्या चाहिए ?''

रंतिदेव बोले :

''न कामयेऽहं गतिमीश्वरात् परा-
मष्टर्द्धियुक्तामपुनर्भवं वा ।
आर्तिं प्रपद्येऽखिलदेहभाजा-
मन्तःस्थितो येन भवन्त्यदुःखाः ॥

'मैं भगवान से आठों सिद्धियों से युक्त परम गति नहीं चाहता । और तो क्या, मैं मोक्ष की भी कामना नहीं करता । मैं चाहता हूँ तो केवल यही कि मैं संपूर्ण प्राणियों के हृदय में स्थित हो जाऊँ और उनका सारा दुःख मैं ही सहन करूँ, जिससे और किसी भी प्राणी को दुःख न हो ।'

(श्रीमद्भागवत : ९.२१.१२)

प्रभु ! मुझे दुनिया के दुःख मिटाने में बहुत शांति मिलती है, बहुत आनंद मिलता है । बस, आप ऐसा करो कि लोग पुण्य का फल सुख तो स्वयं भोगें लेकिन उनके भाग्य का जो दुःख है, वह मैं उनके हृदय में भोगूँ ।''

भगवान ने कहा : ''रंतिदेव ! उनके हृदय में तो मैं रहता हूँ, तुम कैसे घुसोगे ?''

बोले : ''महाराज ! आप रहते तो हो लेकिन करते कुछ नहीं हो । आप तो टकुर-टकुर देखते रहते हो, सत्ता देते हो, चेतना देते हो और जो जैसा करे ऐसा फल पाये... मैं रहूँगा तो अच्छा करे तो उसका फल वह पाये और मंदा करे तो उसका फल मैं पा लूँ । दूसरे का दुःख हरने में बड़ा सुख मिलता है महाराज ! मुझे उनके हृदय में बैठा दो ।''

जयदयाल गोयंदकाजी कहते थे : ''भगवान मुझे बोलेंगे : तुझे क्या चाहिए ? **(शेष पृष्ठ १९ पर)**

कर्म का फल

(पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

वृन्दावन में बलदेवदासजी महाराज हो गये। वे बहुत अच्छी सूझबूझ के धनी थे। वे सुबह तीन बजे उठते और वृन्दावन की प्रदक्षिणा करने के लिए निकल जाते तथा सूरज उगते-उगते वापस आते। एक दिन उन्होंने देखा कि कुछ लोग भंडारा कर रहे हैं।

बलदेवदासजी बोले : ''अरे ! इतनी जल्दी, अँधेरे में भंडारा ! अभी तो सूरज भी नहीं उगा और इधर भंडारा हो रहा है ! क्या बात है ?''

वे लोग बोले : ''महाराज ! आओ, आप भी पराँठा खा लो।''

''मैं सूरज उगने के बाद, नियम आदि करके देर से कभी नाश्ता लेता हूँ। सुबह-सुबह खाना स्वास्थ्य के लिए अच्छा नहीं है। सुबह-सुबह मैं तुम्हारा पराँठा क्यों खाऊँगा ! पराँठा तुम्हारा है लेकिन पेट तो हमारा है !''

''महाराज ! खा लो, खा लो, बहुत बढ़िया है।'' उन लोगों ने बहुत हाथाजोड़ी की तो महाराज ने कंधे पर जो अँगोछा था, उसे आगे करके कहा : ''इसमें बाँधकर दे दो।'' पत्तल आदि में पराँठा डालकर अँगोछे में बाँधकर महाराज को दे दिया कि ले जाओ, उधर खाना। पराँठा लेकर बलदेवदासजी महाराज पहुँच गये अपनी कुटिया पर। सूर्यनारायण उदय हुए। अपना नियम किया, तुलसी के पत्ते खाये, सूर्य की धूप में स्नान (सूर्यस्नान) किया, फिर वह अँगोछा उठाया, खोला तो पराँठा तो था लेकिन पराँठे के अंदर मांस था। उनकी तो चीख निकल गयी : 'बाप रे ! मांस का पराँठा ! ऐ ! छीः ! छीः !!' जैसे अंदर आलू डालकर पराँठा या पूरणपूड़ी (विशेष प्रकार की मीठी रोटी) बनाते हैं, ऐसे मांसपूड़ी बनायी गयी थी। सोचने लगे, 'भंडारा और मांस ! यह सब क्या है ? वे कौन हैं ? मैं उनसे पूछूँगा।'

दूसरे दिन सुबह जल्दी उठे और उसी रास्ते से प्रदक्षिणा करते उधर पहुँचे। देखा तो उनका भंडारा चालू था।

बोले : ''तुम तो कोई साधु जैसे, कोई पुजारी जैसे कपड़े पहनते हो लेकिन कल भंडारा किया था तो हमको मांसवाली रोटी दी ! मैंने तो अँगोछा भी फेंक दिया। सच बताओ, तुम लोग कौन हो ? हिन्दू धर्म को भ्रष्ट करने के लिए ऐसा करनेवाले तुम कोई विदेशी लोग हो कि कोई और हो ? आजकल कई विदेशी लोग हिन्दू साधुओं जैसे कपड़े पहनकर घूमते हैं। बोलो, तुम कौन हो ? मुसलमान में से हिन्दू बने हो कि क्रिश्चियन में से हिन्दू बने हो ?''

बोले : ''हम साधु नहीं हैं। हमने इस वृन्दावन जैसी जगह पर जरा साधु जैसे कपड़े धारण कर लिये हैं। हम तो भूत हैं भूत !''

महाराज ने कहा : ''इतने सारे ?''

बोले : ''हाँ, हम वृन्दावन में, भगवान के धाम में तो रहते थे लेकिन हमने तीर्थ में न करने जैसा काम किया - मांस आदि न खाने जैसा खाया, दान का माल हड़प किया, व्यभिचार किया, गड़बड़ी की, धर्म के नाम पर लोगों से धोखा किया इसलिए हम प्रेत होकर भटक रहे हैं। सात महापुण्य-क्षेत्रों में मरने पर यमदूत जीवात्मा को नरक में ले जाने के लिए नहीं आते - अयोध्या, मथुरा, हरिद्वार, काशी, कांची, उज्जैन और द्वारिका।

तो बाबा ! हमने पापकर्म तो नरक में जाने जैसे किये थे लेकिन स्थान के प्रभाव से यमदूत हमको नरक में नहीं ले जा सके, इसलिए हम प्रेत होकर इधर ही भटक रहे हैं। यह हम प्रेतों का भंडारा है।''

अन्यक्षेत्रे कृतं पापं तीर्थक्षेत्रे विनश्यति।
तीर्थक्षेत्रे कृतं पापं वज्रलेपो भविष्यति॥

'और जगह किया हुआ पाप तीर्थक्षेत्र में जाओ तो मिट जाता है परंतु तीर्थक्षेत्र में किया हुआ पाप वज्रलेप हो जाता है ।'

मनुष्य न करने जैसे कर्म तो कर डालता है लेकिन जब कर्म फल देने को आता है तब दुःखी होता है, घबराता है, रोता है और तरह-तरह की नारकीय यातनाओं का शिकार बनता है । इसलिए कर्म करने में सदैव सावधान रहना चाहिए क्योंकि

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम् ।

शुभ और अशुभ कर्मों का फल जरूर, जरूर, जरूर भोगना पड़ता है ।

कुसंग में आदमी गड़बड़ करता है, फिर गिरते-गिरते जब प्रेत होकर अशांत होता है, आग में जलता है तब पता चलता है । इसलिए अच्छे संग की खूब महिमा है । संतों के संग से, भक्तों के संग से और नियम-निष्ठा से अच्छा संग मिलता है, नहीं तो फिसलनेवाला संग तो बहुत मिलेगा । लोग चापलूसी करके तुमसे न करने जैसे पापकर्म करा लेंगे और जब कर्म बंधन बनकर आयेगा तो कोई पूछेगा नहीं । जो पापकर्म करते हैं उन्हें मरने के बाद प्रेत होकर भटकना पड़ता है, नहीं तो पेड़-पौधे बन जाते हैं, छिपकली बन जाते हैं, घोड़ा-गधा, कुत्ता आदि बन जाते हैं और जो गर्भ में नहीं टिक पाते वे नाली में, गटर में बह जाते हैं, दुःखी होते हैं । और जो सत्संग में जाता है, सत्संग सुनता है उसका मन, बुद्धि, विचार सब ऊँचा हो जाता है, जिससे वह पापकर्मों से बच जाता है । उसको ये यातनाएँ नहीं भोगनी पड़तीं । जो पापकर्म करते हैं, उनको तो बहुत दंड मिलता है, बहुत सजा भोगनी पड़ती है ।

ऐसा नहीं है कि भगवान वैकुण्ठ में बैठकर इसका ऐसा करो, इसका ऐसा करो - इस प्रकार कर्मों का फल सुनिश्चित करता है । अरे ! कोई एक-दो आदमी का, दस आदमी का करे तो भी वह पागल हो जाय ! करोड़ों आदमियों का दिन भर भगवान ऐसा करेगा क्या ? कर सकता है क्या ?

तो भगवान सबको, सबके शुभ-अशुभ कर्मों को कैसे देखता है ? अरे ! वह ज्ञानस्वरूप अंतरात्मा होकर सबके अंदर बैठा है । ऐसा नहीं कि उधर (ऊपर) बैठकर कोई देखता है, वह यहीं अंतरात्मरूप से देखता है । भगवान के इस विधान को समझकर बुद्धि का विकास करना चाहिए । सत्संग में जो सुना है, संतों ने, सत्शास्त्रों ने जो नियम बताये हैं - क्या खाना-क्या न खाना, किससे मिलना-किससे न मिलना, क्या कर्म करना-क्या न करना उनका पालन करना चाहिए । ऐसे कर्म क्यों करना जिससे बुद्धि भ्रष्ट हो जाय, पुण्य नष्ट हो जाय । कोई नहीं देखता फिर भी अंतर्यामी तो जानता है, गुरु भी जानते हैं ऐसा समझकर कर्म ऐसे करें कि करने का अंत हो जाय, वास्तविक जीवन जानकर अमरता का अनुभव हो जाय, जन्म-मरण का बंधन टूट जाय । ❐

(पृष्ठ १७ 'भाव से भलाई' का शेष) तो मैं बोलूँगा : महाराज ! सबका उद्धार कर दो ।''

तो दूसरे संत ने कहा कि ''अगर भगवान सबका उद्धार कर देंगे तो फिर भगवान निकम्मे रह जायेंगे, फिर क्या करेंगे ? सबका उद्धार हो गया तो सारा संसार मुक्त हो गया, फिर तो भगवान निकम्मे हो जायेंगे ।''

उन्होंने कहा कि ''भगवान निकम्मे हो जायें इसलिए मैं नहीं माँगता हूँ और सबका उद्धार हो जाय यह संभव भी नहीं, यह भी मैं जानता हूँ । लेकिन सबका उद्धार होने की भावना से मेरे हृदय का तो उद्धार हो जाता है न !''

जैसे किसीका बुरा सोचने से उसका बुरा नहीं होता लेकिन अपना हृदय बुरा हो जाता है, ऐसे ही दूसरों की भलाई सोचने से, भला करने से अपना हृदय भला हो जाता है । ❐

अपना भाग्य अपने हाथों में

एक राजा था । राजाओं के भी अपने-अपने शौक होते हैं । उस राजा के दरबार में कई गायक, कवि, भाट, चारण अपनी-अपनी कृति प्रस्तुत करते थे । उनको जब राजा पुरस्कार देना चाहता, इनाम देना चाहता तब वह अपनी मूँछ पर हाथ घुमाता । हाथ में जितने बाल आ जाते उतनी ही अशर्फियाँ पुरस्कार रूप में दी जातीं ।

एक दिन किसी वेदांती गुरु का शिष्य, सच्चे संत का सत्शिष्य कवि राजा के दरबार में पहुँच गया । उसने अपनी कविता सुनायी । उसमें नीतिमत्ता की बात तो थी ही, परंतु उससे ऊपर आत्मा-ब्रह्म के एकत्व की सर्वोपरि सीख भी उस कविता में भरी थी । धर्म, ज्ञान, वैराग्य की बातें थीं । निर्भीकता के अंश उस कविता में प्रकट होते थे । मानो वेदांती कविता थी । ऐसी कविता सुनकर सभा के लोग 'साधो साधो... वाह वाह !' करने लगे, बड़े प्रसन्न हुए । राजा भी खुश हुआ । अब कवि को इनाम देने की बारी आयी । वही पुरानी आदत, राजा मूँछ ऐंठने लगा । उसकी दो उँगलियों में एक ही बाल आया । राजा ने कहा : ''कवि ! तेरी कविता तो बहुत बढ़िया है परंतु तेरा भाग्य फूटा हुआ है । मेरे हाथ में सिर्फ एक ही बाल आया । तुम्हें एक ही अशर्फी इनाम में मिलेगी ।''

कवि स्पष्टवक्ता और निर्भीक था । उसने कहा : ''राजन् ! मूँछ भी आपकी है और हाथ भी आपका है । इसमें मेरे भाग्य को क्यों घसीटते हो ? भाग्य तो मेरा तब माना जायेगा जब मूँछ आपकी हो और हाथ मेरा हो । तब पता चलेगा कि मेरा भाग्य कैसा है ।

राजन् ! यह ध्यान से सुन लो । मनुष्य अपने भाग्य का आप विधाता है । मनुष्य चाहे तो संसार की वस्तुओं को 'मेरी-मेरी' करते-करते, संसार का चिंतन करते-करते अपने भाग्य को नासूर कर दे । बार-बार जन्मे और बार-बार मरे । और वही चाहे तो संसार की वस्तु संसार की समझकर ईश्वर के दैवी कार्यों में उसका यथायोग्य सदुपयोग करे, ईश्वर का प्यारा हो जाय । चाहे तो किसीकी निंदा सुने-करे और अपनी शांति, स्वास्थ्य, पुण्य व प्रसन्नता नष्ट करे और चाहे तो निंदा-स्तुति से पार सत्कर्म करे-कराये और अपना भाग्य बनाये । मनुष्य चाहे तो यज्ञ-याग, होम-हवन करके स्वर्ग का पासपोर्ट बना ले; चाहे तो इष्ट का स्मरण, जप-तप करके इष्टलोक तक की अपनी यात्रा पक्की करा ले । इससे भी आगे अगर चाहे तो देवी-देवता नहीं, मरने के बाद स्वर्ग नहीं परंतु जीते-जी शाश्वत सुख देनेवाले किसी सद्गुरु को खोज ले । उनका सत्संग-श्रवण करके अपनी बुद्धि को विकसित करे । सुख-दुःख में सम रहने की कला पाकर अपने आत्मसिंहासन पर विराजे और भगवद्भाव से, भगवद्ज्ञान से परिपूर्ण हो जाय । सद्गुरुओं के संकेत समझकर सत्यस्वरूप का साक्षात्कार करके परमात्मा की मुलाकात कर ले, यह भी मनुष्य के **(शेष पृष्ठ २३ पर)**

महापुरुषों की युक्ति !

(पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

संसारियों को कई गुत्थियों का हल नहीं मिल पाता । यदि मिल भी जाता है तो एक को राजी करने के लिए दूसरे को नाराज करना पड़ता है एवं नाराज हुए व्यक्ति के कोप का भाजन बनना पड़ता है । जबकि ज्ञानियों के लिए उन गुत्थियों को हल करना आसान होता है । ज्ञानी महापुरुष ऐसी दक्षता से गुत्थी सुलझा देते हैं कि किसी भी पक्ष को खराब न लगे । इसीलिए देवर्षि नारदजी की बातें देव-दानव दोनों मानते थे ।

स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज

ऐसी ही एक घटना मेरे गुरुदेव के साथ परदेश में घटी थी : एयरपोर्ट पर गुरुदेव को लेने के लिए बड़ी-बड़ी हस्तियाँ आयी थीं । कई लोग अपनी-अपनी बड़ी आलीशान गाड़ियों में गुरुदेव को बैठाने के लिए उत्सुक थे । एक-दो आगेवानों के कहने से और सब तो मान गये लेकिन दो भक्त हठ पर उतर गये : ''गुरुदेव बैठेंगे तो मेरी ही गाड़ी में !'' मामला जटिल हो गया । दोनों में से एक भी टस-से-मस होने को तैयार न था । इन दोनों भक्तों की जिद अन्य भक्तों के लिए सिरदर्द बन गयी ।

एक ने कहा : ''यदि पूज्य गुरुदेव मेरी गाड़ी में नहीं बैठेंगे तो मैं गाड़ी के नीचे सो जाऊँगा ।''

दूसरे ने कहा : ''पूज्य गुरुदेव मेरी गाड़ी में नहीं बैठेंगे तो मैं जीवित न रहूँगा ।''

ऐसी परिस्थिति में क्या करें, क्या न करें यह किसीकी समझ में नहीं आ रहा था । दोनों बड़ी हस्तियाँ थीं, अहं का दायरा भी बड़ा था । दोनों में से किसीको भी बुरा न लगे ऐसा सभी भक्त चाहते थे । इतने में तो मेरे गुरुदेव का जहाज हवाई अड्डे पर आ गया । पूज्य गुरुदेव बाहर आये तब समितिवालों ने गुरुदेव का भव्य स्वागत करके खूब नम्रता से परिस्थिति से अवगत कराया एवं पूछा : ''साँईं ! अब क्या करें ?''

ब्रह्मवेत्ता महापुरुष कभी-कभी ही परदेश पधारते हैं । अतः स्वाभाविक है कि प्रत्येक व्यक्ति निकट का सान्निध्य प्राप्त करने का प्रयत्न करे । प्रेम से प्रयत्न करना अलग बात है और नासमझ की तरह जिद करना अलग बात है । संत तो प्रेम से वश हो जाते हैं जबकि जिद के साथ नासमझी उपरामता ले आती है । लोगों ने कहा : ''दोनों के पास एक-दूसरे से टक्कर ले ऐसी गाड़ियाँ एवं निवास हैं । बहुत समझाया पर मानते नहीं हैं । हमारी गाड़ी में बैठकर हमारे घर आयें ऐसी जिद लेकर बैठे हैं । अब आप ही इसका हल बताने की कृपा करें । हमें कुछ सूझता नहीं है ।''

पूज्य गुरुदेव बड़ी सरलता एवं सहजता से बोले : ''भाई ! इसमें चिंता करने जैसी बात ही कहाँ है ? सीधी बात है और सरल हल है । जिसकी गाड़ी में बैठूँगा उसके घर नहीं जाऊँगा और जिसके घर जाऊँगा उसकी गाड़ी में नहीं बैठूँगा । अब निश्चय कर लो ।''

उस जटिल गुत्थी को गुरुदेव ने चुटकी बजाते हल कर दिया कि 'एक की गाड़ी, दूसरे का घर !'

दोनों पूज्य गुरुदेव के आगे हाथ जोड़कर खड़े हो गये : ''गुरुदेव ! आप जिस गाड़ी में बैठना चाहते हैं उसीमें बैठें । आपकी मर्जी के अनुसार ही होने दें ।''

थोड़ी देर पहले तो हठ पर उतरे थे परंतु संत के व्यवहार-कुशलतापूर्ण हल से दोनों ने जिद छोड़कर निर्णय भी संत की मर्जी पर ही छोड़ दिया ! प्राणिमात्र के परम हितैषी संतजनों द्वारा सदैव सर्व का हित ही होता है ।

ब्रहमगिआनी ते कछु बुरा न भइआ । ☐

अहंकार से रहित हों

(पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

हर व्यक्ति श्रीकृष्ण का रूप है लेकिन...

आत्मसाक्षात्कार सब अनुभवों के बापों का बाप है। आत्मानुभव के आगे सारे अनुभव छोटे पड़ जाते हैं। आत्मसाक्षात्कार करने के लिए तटस्थ रहना पड़ता है। जैसे दूसरों में दोष देखते हैं ऐसे ही अपने मन के दोष देखो, मन से मिलो मत। अपने मन-बुद्धि के दोषों को ढँकने की कोशिश मत करो अपितु उन्हें बाहर निकालो और 'निकालनेवाला मैं हूँ'- ऐसा अहंकार न करो। ईश्वर की कृपा का सहारा लेकर उन्हें निकालोगे तो वे आसानी से निकल जायेंगे, नहीं तो निकालने के बहाने और गहरे उतरेंगे।

अन्य को तज, ईश्वर को भज। बहिर्मुखता छोड़, भीतर आ। 'मैं क्या करूँ, क्या न करूँ ?' यह सब चिंता छोड़, ईश्वर में रह बस। सब ठीक हो जायेगा। ॐकार का लम्बा उच्चारण करो। 'अ' और 'म्' के बीच निःसंकल्प नारायण में शांत होते जाओ। श्वास अंदर आये तो **'सोऽऽ'** और बाहर आये तो **'हम्'** - अजपा गायत्री में रहो। 'मैं वही चैतन्य हूँ - **सोऽहम्।** इसमें विश्रांति पाओ, अपने आत्मसुख में तृप्त होओ, सुखी होओ।

सेवा करो तो ईश्वर की प्रसन्नता के लिए। सर्वव्यापी, सर्वेश्वर की सेवा करते समय अपने अहंकार व वासना को महत्त्व न दो। चालबाजी नहीं, सच्चाई रखो। ईश्वर सत्यस्वरूप है। फिर झूठ क्यों बोलें ? कपट क्यों करें ? सुखी होना स्वाभाविक है, सुख तुम्हारा स्वतः स्वभाव है। रात को कुछ नहीं करते तो सुबह कैसे सुखी हो जाते हो ! विकारों के बिना कैसे सुखी रहते हो, पकड़ने-छोड़ने की इच्छा बिना कितने सुखी होते हो ! व्यक्ति बचपन में सहज स्वभाव होता है तो कितना खुश रहता है किंतु जैसे-जैसे बड़ा होता जाता है, अहंकार और पुष्ट होता है, वासनाएँ उभरती हैं तो बेचारे को खुश रहने के लिए कितनी मेहनत करनी पड़ती है ! और फिर भी उतना खुश नहीं रह पाता।

एक आदमी ने 'श्रीमद्भागवत' पर फिल्म बनानी चाही। उसने घुँघराले बालोंवाले किसी नन्हे-मुन्ने बालक को श्रीकृष्ण की भूमिका अदा करने के लिए पसंद किया, दूसरे पात्रों के लिए उनके अनुरूप कलाकारों का चयन किया। लेकिन आर्थिक तंगी के कारण उसकी फिल्म अधूरी रह गयी। कुछ वर्षों बाद उसको आर्थिक मदद मिली और वह पुनः अपनी फिल्म बनाने में लग गया। फिल्म में उसे कंस के पात्र की जरूरत पड़ी। खोजते-खोजते उसने एक व्यक्ति को कंस की भूमिका अदा करने हेतु पसंद किया। जब उसने उस व्यक्ति का नाम व पता जाना तो हैरान होकर बोल पड़ा : ''अरे, कैसा आश्चर्य है ! यह जब नन्हा बच्चा था तब मैंने इसीको श्रीकृष्ण की भूमिका अदा करने के लिए पसंद किया था। वही बालक आज कंस की भूमिका अदा करने हेतु पसंद किया गया ! इसका रूप ऐसा कैसे हो गया ?''

हर व्यक्ति जन्म लेता है तब श्रीकृष्ण का रूप होता है लेकिन वासना और अहंकार उसे कंस बना देते हैं। इनको छोड़े तो उसका श्रीकृष्ण रूप प्रकट हो जाता है।

अहंकाररूपी चुंगी देनी ही पड़ेगी

एक आदमी था जिसको अपना माल लेकर नगर में जाना था लेकिन उसने देखा कि रास्ते में चुंगी नाका आता है । उसको चुंगी नहीं देनी थी, अतः उसने थोड़ी देर इधर-उधर घूम-फिरकर फिर जाने की कोशिश की लेकिन हर समय वह चुंगी नाका चालू ! वह पूरी रात चक्कर लगाता रहा किंतु आखिर उसे चुंगी देनी ही पड़ी ।

ऐसे ही कितना भी धन कमा लो, कितनी भी पद-प्रतिष्ठा और सत्ता पा लो, ऋद्धि-सिद्धि पा लो लेकिन शाश्वत सुख पाने के लिए, परमात्म-स्वरूप का ज्ञान पाने के लिए अपना अहं परब्रह्म-परमात्मा को चुंगी के रूप में देना ही पड़ता है । फिर चाहे भटक-भटककर दो या सीधे ही दे दो । कई जन्म बीत गये, और भी कितने ही बीत जायें, जब तक आत्मज्ञान नहीं होता तब तक सब दुःखों का अंत नहीं होगा । सब दुःखों से छुटकारा पाना है तो ब्रह्मज्ञानी गुरु के चुंगी नाके से होकर ही जाना पड़ेगा और अहंकाररूपी चुंगी देनी ही पड़ेगी । ☐

(पृष्ठ २० 'अपना भाग्य अपने हाथों में' का शेष)

हाथ की बात है । इसलिए राजन् ! मेरा भाग्य मेरे हाथ में है ।''

किसी राजा, सत्ताधीश या तथाकथित धनाढ्य लोगों के हाथ में भाग्य सौंपनेवाले खुशामदखोर भले ही ऐसे लोगों को अपना भाग्य-विधाता मान लें, वास्तव में अपना भाग्य अपने हाथ में है । जैसा कर्म और चिंतन करते हैं ऐसा ही अपना भाग्य बदलता रहता है ।

तुम भी अपने भाग्य के आप विधाता हो । भूतकाल में चाहे जैसा कर्म या चिंतन हो गया हो फिर भी घबड़ाओ मत, चिंतित मत हो । अपना भाग्य अपने हाथ में रखो । हताशा, निराशा, लघुताग्रंथि को अपने में मत आने दो । ☐

सत्शास्त्रों का आदर
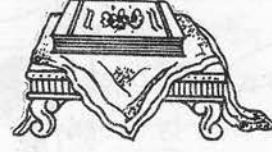
ग्रंथों में देखा जाय तो कागज और स्याही होती है और होते हैं वर्णमाला के अक्षर, जो तुम विद्यालय में पढ़े हो, पढ़ाते हो । लेकिन फिर भी वे अक्षर सत्संग के द्वारा दुहराये जाते हैं और उस ढंग से छप जाते हैं तब वह पुस्तक नहीं रहती, वह स्याही और कागज नहीं रहता, वह शास्त्र हो जाता है और हम उसे शिरोधार्य करके, उसकी शोभायात्रा निकालकर अपने प्रेम और पुण्य स्वभाव को जागृत करते हैं । जिन ग्रंथों में संतों की वाणी है, संतों का अनुभव है, उन ग्रंथों का आदर होना ही चाहिए । हमारे जीवन में ये सत्शास्त्र अत्यधिक उपयोगी हैं । उनका आदरसहित अध्ययन करके एवं उनके अनुसार आचरण करके हम अपने जीवन को उन्नत कर सकते हैं ।

स्वामी विवेकानंद तो यहाँ तक कहते हैं कि जिस घर में सत्साहित्य नहीं वह घर नहीं वरन् श्मशान है, भूतों का बसेरा है ।

अतः अपने घर में तो सत्साहित्य रखें और पढ़ें ही किंतु औरों को भी सत्साहित्य पढ़ने की प्रेरणा देते रहें । उसमें आपका तो कल्याण होगा ही, औरों के कल्याण में भी आप सहभागी बन जायेंगे ।

मुँह से उँगली गीली करके सत्पुरुषों की वाणी का पन्ना नहीं पलटना चाहिए । पवित्रता और आदर से संतों की वाणी को पढ़नेवाला ज्यादा लाभ पाता है । सामान्य पुस्तकों की तरह सत्संग की पुस्तक पढ़कर इधर-उधर नहीं रख देनी चाहिए । जिसमें परमात्मा की, महापुरुषों की अनुभूति है, जो परमात्मशांति देनेवाली है वह तो पुस्तक नहीं शास्त्र है । उसका जितना अधिक आदर, उतना अधिक लाभ ! ☐
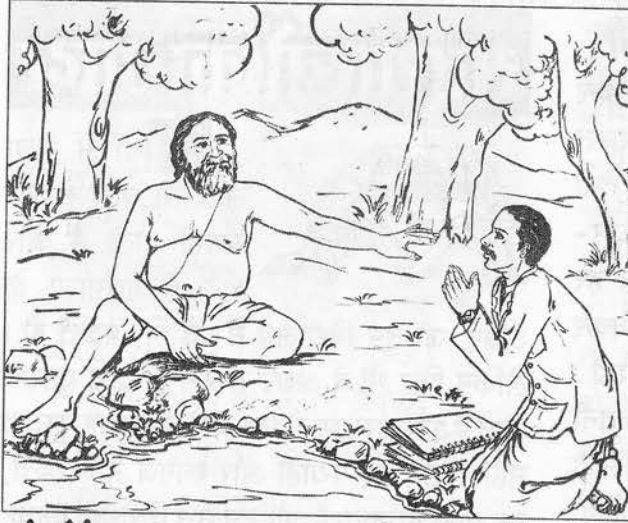
संतों का समय व्यर्थ न करें

- पूज्य बापूजी

चाणोद करनाली में श्री रंगअवधूत महाराज नर्मदा के किनारे उसकी शांत लहरों को निहार रहे थे । एक स्टेशन मास्टर ने देखा कि जिनका काफी नाम सुना है, वे ही श्री रंगअवधूत महाराज बैठे हुए हैं । वह उनको प्रणाम करके बोला : ''बाबाजी ! बाबाजी !! ४२वाँ साल चल रहा है, अभी तक घर में झूला नहीं बँधा, संतान नहीं हुई ।''

श्री रंगअवधूतजी बोले : ''यहाँ भी संतान की ही बात करता है ! अच्छा जा, हो जायेगी ।''

अधिकारी बोला : ''लेकिन डॉक्टर लोग बोलते हैं खराबी है, ऐसा है-वैसा है ।''

''अरे ! हो जायेगी । जा अब यहाँ से ।''

''बाबाजी ! बेटा होगा क्या मुझे ?''

''हाँ बाबा हाँ ! जा अब यहाँ से ।''

''किंतु बाबाजी ! डॉक्टर तो मना करते हैं । एक बार फिर से कह दीजिये न, कि बेटा होगा !''

''जा साले ! अब कभी नहीं होगा । कितना सिर खपाया तूने संत का ! संत चुप रहते हैं तो ईश्वर के साथ रहते हैं । बोलना पड़ता है, सुनना पड़ता है तो कितना नीचे गिरा रहा है । अब कभी नहीं होगी जा !''

सत्यस्वरूप में जागे हुए महापुरुष का संकेत ही काफी होता है । जो महापुरुष सत्यस्वरूप परमात्मा में स्थित हैं, वे तो नजरों-नजरों में ही दे देते हैं । अतः एक ही बात उनसे बार-बार पूछकर उनका समय खराब करना माने अपना भाग्य ही खराब करना है । संतों के पास श्रद्धा-भक्ति से बैठकर सत्संग-श्रवण करना और उसका मनन-चिंतन करना तो बढ़िया है किंतु संसार की नश्वर वस्तुओं के लिए बार-बार उनका समय लेना अपराध है ।

सूर्य को बोले : 'प्रकाश दो ।' चन्द्रमा को बोले : 'चाँदनी दो ।' गंगा को बोले : 'पानी दो ।'... यह तो उनका स्वभाव है । ऐसे ही आत्मज्ञानी संतों को बोलते हैं : 'आशीर्वाद दो ।' ऐसे लोग अनगढ़, नासमझ होते हैं । उसमें भी स्टेशन मास्टर ने हद कर दी नासमझी की ! ❑

आत्मरसायन

जीवन के सत्य को स्वीकार करना सत्संग है । बुराईरहित होना, चाहरहित होना और प्रेमी होना सत्संग है । बुराईरहित होने का उपाय है - किसी-न-किसी नाते सभीको अपना मानना । चाहरहित होने का अर्थ है - अपना कोई संकल्प न रहना और प्रेमी होने का अर्थ है - केवल प्रभु से ही नित्य एवं आत्मीय संबंध स्वीकार करना । इन तीनों बातों को करने में मानवमात्र स्वाधीन है और वर्तमान में कर सकता है ।

सभीको अपना मानने से निर्विकारिता, किसीको अपना न मानने से निःसंदेहता और सर्वसमर्थ प्रभु को अपना मानने से निर्भयता की अभिव्यक्ति होती है । निर्विकारिता से जीवन जगत के लिए, निःसंदेहता से अपने लिए और निर्भयता से प्रभु के लिए उपयोगी होता है । यही जीवन की पूर्णता है ।

एको धर्मः परं श्रेयः

महात्मा विदुर राजा धृतराष्ट्र से बोले : राजन् ! **एको धर्मः परं श्रेयः ।** 'एकमात्र धर्म ही परम कल्याणकारी है ।' भगवती श्रुति की आज्ञा है : **धर्मं चर, धर्मान्न प्रमदितव्यम् ।** 'धर्म करो, धर्मकार्य में प्रमाद नहीं करना चाहिए ।'

वेदों में जिन कर्मों का विधान किया गया है वे धर्म हैं और जिनका निषेध किया है वे अधर्म हैं । वेद स्वयं भगवान के स्वरूप हैं । वे उनके स्वाभाविक श्वास-प्रश्वास हैं । वेद, स्मृति, सत्पुरुषों का आचरण और अपने आत्मा की प्रसन्नता - ये चार धर्म के परिचायक हैं ।

इस लोक में जो मनुष्य जिस प्रकार का और जितना अधर्म या धर्म करता है, वह परलोक में उसका उतना और वैसा ही फल भोगता है ।

धनाद्धर्मस्ततः सुखम् ।

'धन से धर्म और धर्म से सुख होता है ।'

धर्मानुसरण में ही शक्ति और मुक्ति निहित है । शास्त्रों में यज्ञ, अध्ययन, दान, तप, सत्य, क्षमा, दया और अलोभ - ये धर्म के आठ प्रकार के मार्ग बताये गये हैं ।

''मैं धर्म का फल पाने के लोभ से धर्म का आचरण नहीं करता अपितु...''

धर्म के आश्रय से ही ऋषियों ने संसार-समुद्र को पार किया है । धर्म पर ही संपूर्ण लोक टिके हुए हैं । धर्म से ही देवताओं की उन्नति हुई है और धर्म में ही अर्थ की भी स्थिति है ।

धर्ममेवानुवर्तस्व न धर्माद् विद्यते परम् ।

हे राजन् ! तुम धर्म का पालन करो । धर्म से बढ़कर दूसरी कोई वस्तु नहीं है । सज्जन पुरुषों द्वारा किये हुए धर्माचरण को करनेवाले राजा की राज्यभूमि धन-धान्य से पूर्ण होकर समृद्धि को प्राप्त होती है और उसके ऐश्वर्य को बढ़ाती है । जो राजा धर्म को छोड़कर अधर्म को अपनाता है, उसकी राज्यभूमि आग पर रखे हुए चमड़े की भाँति संकुचित हो जाती है । इसलिए -

धर्मेण राज्यं विन्देत धर्मेण परिपालयेत् ।
धर्ममूलां श्रियं प्राप्य न जहाति न हीयते ॥

'धर्म से ही राज्य प्राप्त करें और धर्म से ही उसकी रक्षा करें क्योंकि धर्ममूलक राज्यलक्ष्मी को पाकर न तो राजा उसे छोड़ता है और न वह राजा को छोड़ती है ।'

दृष्टांत कथा

'महाभारत' के वन पर्व में आता है कि धर्मराज युधिष्ठिर से द्रौपदी कहती है : ''हे कुंतीनंदन ! आपका राज्य व जीवन दोनों धर्म के लिए ही हैं । आप मेरे सहित भीमसेन, अर्जुन और नकुल-सहदेव को भी त्याग देंगे पर धर्म का त्याग नहीं करेंगे । मैंने आर्यों के मुँह से सुना है कि यदि धर्म की रक्षा की जाय तो वह धर्मरक्षक राजा की भी रक्षा करता है किंतु मुझे मालूम होता है कि वह आपकी रक्षा नहीं कर रहा है । जो आर्यशास्त्रों की आज्ञा का उल्लंघन व धर्म की हानि करनेवाला, क्रूर तथा लोभी है उस धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधन को धन देकर विधाता क्या फल पाता है ?''

युधिष्ठिर बोले : ''सुशोभने ! मैं धर्म का फल पाने के लोभ से धर्म का आचरण नहीं करता अपितु साधु पुरुषों के आचार-व्यवहार को देखकर शास्त्रीय मर्यादा का उल्लंघन न करके स्वभाव से ही मेरा मन धर्मपालन में लगा है । जो मनुष्य कुछ पाने की इच्छा से धर्म का व्यापार करता है वह धर्मवादी पुरुषों की दृष्टि में हीन और निंदनीय है ।

कृष्णे ! सर्वज्ञ और सर्वद्रष्टा महर्षियों द्वारा प्रतिपादित तथा शिष्ट पुरुषों द्वारा आचरित पुरातन धर्म पर शंका नहीं करनी चाहिए । **जो धर्म के**

प्रति संदेह करता है, उसकी शुद्धि के लिए कोई प्रायश्चित्त नहीं है ।

साध्वी द्रौपदी ! यदि धर्मपरायण पुरुषों द्वारा पालित धर्म निष्फल होता तो संपूर्ण जगत असीम अंधकार में निमग्न हो जाता । कृष्णे ! यहाँ धर्म का फल देनेवाले ईश्वर अवश्य हैं, यह बात जानकर ही उन ऋषि आदिकों ने धर्म का आचरण किया है । धर्म ही सनातन श्रेय (श्रेष्ठ, मंगलमय) है । धर्म निष्फल नहीं होता ।

धर्म का फल तुरंत दिखायी न दे तो इस कारण धर्म एवं देवताओं पर शंका नहीं करनी चाहिए । दोषदृष्टि न रखते हुए यत्नपूर्वक यज्ञ और दान करते रहना चाहिए । कर्मों का फल यहाँ अवश्य प्राप्त होता है, यह धर्मशास्त्र का विधान है । इसलिए कृष्णे ! यह सब कुछ सत्य है, ऐसा निश्चय करके तुम्हारा धर्मविषयक संदेह कुहरे की भाँति नष्ट हो जाना चाहिए ।

कल्याणी ! जो सदा धर्म के विषय में पूर्ण निश्चय रखनेवाला है और सब प्रकार की आशंकाएँ छोड़कर धर्म की ही शरण लेता है, वह परलोक में अक्षय, अनंत सुख का भागी होता है अर्थात् परमात्मा को प्राप्त हो जाता है । इसीलिए मनस्विनी ! समस्त प्राणियों का भरण-पोषण करनेवाले ईश्वर पर आक्षेप बिल्कुल न करो । कृष्णे ! जिनके कृपाप्रसाद से उनके प्रति भक्तिभाव रखनेवाला मरणधर्मा मनुष्य अमरत्व को प्राप्त हो जाता है, उन परम देव परमेश्वर की तुमको किसी प्रकार अवहेलना नहीं करनी चाहिए ।''

जो धर्म के प्रति संदेह करता है, उसकी शुद्धि के लिए कोई प्रायश्चित्त नहीं है ।

इस प्रकार जो मनुष्य धर्म-अनुसार आचरण करता है व सब प्रकार के लाभों में धर्मलाभ को ही सर्वोपरि समझता है, वह चिरकाल तक सुख का उपभोग करता है ।

धर्मो हि विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा ।

'धर्म से ही संपूर्ण जगत की प्रतिष्ठा है ।'

अतः कामना, भय व लोभ से तथा इस जीवन के लिए भी कभी धर्म का त्याग न करें । धर्म नित्य है, सुख-दुःख अनित्य है । आप अनित्य को छोड़कर नित्य धर्मस्वरूप उस परमेश्वर में स्थित होइये, वही अखण्ड, एकरस आनंद का आश्रय है ।

इतिहास साक्षी है अधर्म का आचरण करनेवाला दुर्योधन बाहर से समृद्ध था, सुखी लगता था पर उसका और उसका साथ देनेवालों का अंत क्या हुआ ?

पांडव अकिंचन, अभावग्रस्त दिखते थे फिर भी शांत, सौम्य व प्रसन्न रहते थे । अंत में उनको भोग और मोक्ष, मधुमय मुक्ति प्राप्त हुई । अधर्म की, बाहर की क्षणिक चमक-दमक देखकर कभी भी संसार की आसक्ति हटानेवाला व अपनी आंतरिक शांति, संतोष, प्रभुप्रीति देनेवाला धर्म नहीं छोड़ना चाहिए । ❐

'ज्योत से ज्योत जगाओ' अभियान

गुरुपूर्णिमा से दीपावली तक जो भी साधक भाई-बहन नये बाल संस्कार केन्द्र खोलकर मुख्यालय अमदावाद में पंजीकृत करवायेंगे, उन्हें पूज्य बापूजी का आकर्षक श्रीचित्र और बाल संस्कार केन्द्र हेतु प्रचार-सामग्री उपहारस्वरूप भेजी जायेगी ।

हर समिति अपने चार पदाधिकारियों में से एक को 'संस्कार-सेवा पदाधिकारी' के रूप में नियुक्त करे । गुरुपूर्णिमा से लेकर ३१ दिसम्बर २००९ तक जो समिति अपने क्षेत्र में १०८ या अधिक बाल संस्कार केन्द्र खुलवायेगी, उसके 'संस्कार-सेवा पदाधिकारी' को उत्तरायण पर्व - २०१० में पूज्य बापूजी के करकमलों द्वारा स्वर्णपदक व पुरस्कार से सम्मानित किया जायेगा । संपर्क : बाल संस्कार मुख्यालय, अमदावाद । फोन : (०७९) ३९८७७७४९. web-site : www.ashram.org से अधिक जानकारी प्राप्त करें ।

स्वास्थ्य एवं पर्यावरण रक्षक प्रकृति के अनमोल उपहार

अन्न, जल और वायु हमारे जीवन के आधार हैं। सामान्य मनुष्य प्रतिदिन औसतन १ किलो अन्न और २ किलो जल लेता है परंतु इनके साथ वह करीब १०,००० लीटर (१२ से १३.५ किलो) वायु भी लेता है। इसलिए स्वास्थ्य की सुरक्षा हेतु शुद्ध वायु अत्यंत आवश्यक है।

प्रदूषणयुक्त, ऋण-आयनों की कमीवाली एवं ओजोनरहित हवा से रोगप्रतिकारक शक्ति का ह्रास होता है व कई प्रकार की शारीरिक-मानसिक बीमारियाँ होती हैं।

सन् १९७६ की तुलना में वर्तमान समय में दमे के मरीज दुगने हो गये हैं। हर ९ में से १ बच्चा दमे से पीड़ित है। दमे के कारण मरनेवालों की संख्या वयस्कों में तीन गुनी हो गयी है और ५ से ९ वर्ष की उम्र के बच्चों में चार गुनी हो गयी है। पीपल का वृक्ष दमानाशक, हृदयपोषक, ऋण-आयनों का खजाना, रोगनाशक, आह्लाद व मानसिक प्रसन्नता का खजाना तथा रोगप्रतिकारक शक्ति बढ़ानेवाला है। बुद्धू बालकों तथा हताश-निराश लोगों को भी पीपल के स्पर्श एवं उसकी छाया में बैठने से अमिट स्वास्थ्य-लाभ व पुण्य-लाभ होता है। पीपल की जितनी महिमा गायें, कम है। पर्यावरण की शुद्धि के लिए जनता-जनार्दन एवं सरकार को बबूल, नीलगिरी (यूकेलिप्टस) आदि जीवनशक्ति का ह्रास करनेवाले वृक्ष सड़कों एवं अन्य स्थानों से हटाने चाहिए और पीपल, आँवला, तुलसी, वटवृक्ष व नीम के वृक्ष दिल खोलके लगाने चाहिए। इससे अरबों रुपयों की दवाइयों का खर्च बच जायेगा। ये वृक्ष शुद्ध वायु के द्वारा प्राणिमात्र को एक प्रकार का उत्तम भोजन प्रदान करते हैं। पूज्य बापूजी कहते हैं कि ये वृक्ष लगाने से आपके द्वारा प्राणिमात्र की बड़ी सेवा होगी। यह लेख पढ़ने के बाद सरकार में अमलदारों व अधिकारियों को सूचित करना भी एक सेवा होगी। खुद वृक्ष लगाना और दूसरों को प्रेरित करना भी एक सेवा होगी।

पीपल : यह धुएँ तथा धूलि के दोषों को वातावरण से सोखकर पर्यावरण की रक्षा करनेवाला एक महत्त्वपूर्ण वृक्ष है। यह चौबीसों घंटे ऑक्सीजन उत्सर्जित करता है। इसके नित्य स्पर्श से रोग-प्रतिरोधक क्षमता की वृद्धि, मनःशुद्धि, आलस्य में कमी, ग्रहपीड़ा का शमन, शरीर के आभामंडल की शुद्धि और विचारधारा में धनात्मक परिवर्तन होता है। बालकों के लिए पीपल का स्पर्श बुद्धिवर्धक है। रविवार को पीपल का स्पर्श न करें।

आँवला : आँवले का वृक्ष भगवान विष्णु को प्रिय है। इसके स्मरणमात्र से गोदान का फल प्राप्त होता है। इसके दर्शन से दुगना और फल खाने से तिगुना पुण्य होता है। आँवले के वृक्ष का पूजन कामनापूर्ति में सहायक है। कार्तिक में आँवले के वन में भगवान श्रीहरि की पूजा तथा आँवले की छाया में भोजन पापनाशक है। आँवले के वृक्षों से वातावरण में ऋणायनों की वृद्धि होती है तथा शरीर में शक्ति का, धनात्मक ऊर्जा का संचार होता है।

आँवले से नित्य स्नान पुण्यमय माना जाता है और लक्ष्मीप्राप्ति में सहायक है। जिस घर में सदा आँवला रखा रहता है वहाँ भूत, प्रेत और राक्षस नहीं जाते।

तुलसी : प्रदूषित वायु के शुद्धीकरण में तुलसी का योगदान सर्वाधिक है। तुलसी का पौधा उच्छ्वास में स्फूर्तिप्रद ओजोन (O_3) वायु छोड़ता है, जिसमें ऑक्सीजन (O_2) के दो के स्थान पर तीन परमाणु होते हैं। ओजोन वायु वातावरण के बैक्टीरिया, वायरस, फंगस आदि को नष्ट करके

ऑक्सीजन में रूपांतरित हो जाती है । तुलसी उत्तम प्रदूषणनाशक है । फ्रेंच डॉ. विक्टर रेसीन कहते हैं : 'तुलसी एक अद्‌भुत औषधि है। यह रक्तचाप व पाचनक्रिया का नियमन तथा रक्त की वृद्धि करती है।'

वटवृक्ष : यह वैज्ञानिक दृष्टि से पृथ्वी में जल की मात्रा का स्थिरीकरण करनेवाला एकमात्र वृक्ष है। यह भूमिक्षरण को रोकता है। इस वृक्ष के समस्त भाग औषधि का कार्य करते हैं । यह स्मरणशक्ति व एकाग्रता की वृद्धि करता है। इसमें देवों का वास माना जाता है । इसकी छाया में साधना करना बहुत लाभदायी है । वातावरण-शुद्धि में सहायक हवन के लिए वट और पीपल की समिधा का वैज्ञानिक महत्त्व है ।

नीम : नीम की शीतल छाया कितनी सुखद और तृप्तिकर होती है, इसका अनुभव सभीको होगा । नीम में ऐसी कीटाणुनाशक शक्ति मौजूद है कि यदि नियमित नीम की छाया में दिन के समय विश्राम किया जाय तो सहसा कोई रोग होने की सम्भावना ही नहीं रहती ।

नीम के अंग-प्रत्यंग (पत्तियाँ, फूल, फल, छाल, लकड़ी) उपयोगी और औषधियुक्त होते हैं। इसकी कोंपलों और पकी हुई पत्तियों में प्रोटीन, कैल्शियम, लौह और विटामिन 'ए' पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं ।

नीलगिरी के वृक्ष भूल से भी न लगायें, ये जमीन को बंजर बना देते हैं । जिस भूमि पर ये लगाये जाते हैं उसकी शुद्धि १२ वर्ष बाद होती है, ऐसा माना जाता है । इसकी शाखाओं पर ज्यादातर पक्षी घोंसला नहीं बनाते, इसके मूल में प्रायः कोई प्राणी बिल नहीं बनाते, यह इतना हानिकारक, जीवन-विघातक वृक्ष है। हे समझदार मनुष्यो ! पक्षी एवं प्राणियों जितनी अक्ल तो हमें रखनी चाहिए। हानिकर वृक्ष हटाओ और तुलसी, पीपल, आँवला आदि लगाओ । ❐

स्वाध्याय

नीचे दिये गये रिक्त स्थानों के उत्तर खोजने के लिए इस अंक को ध्यानपूर्वक पढ़िये । उत्तर अगले अंक में प्रकाशित किये जायेंगे ।

(१) दुःख का निर्माण होता है बेवकूफी से और बेवकूफी .... से बनती है ।

(२) .... ही मनुष्य के विकास का मूल मंत्र है ।

(३) निर्मल-हृदय पुरुष ज्ञान-दृष्टि से सबको .... देखते हैं ।

(४) संत तो .... से वश हो जाते हैं जबकि जिद के साथ नासमझी उपरामता ले आती है ।

(५) हर व्यक्ति जन्म लेता है तब श्रीकृष्ण का रूप होता है लेकिन .... उसे कंस बना देते हैं ।

(६) प्राणिमात्र के परम हितैषी .... द्वारा सदैव सर्व का हित ही होता है ।

(७) जो धर्म के प्रति संदेह करता है उसकी .... के लिए कोई प्रायश्चित्त नहीं है ।

(८) भाई तो हमारी लौकिक संपत्ति का रक्षण करते हैं किंतु संतजन व गुरुजन तो हमारी .... संपदा का संरक्षण करके साधना की रक्षा करते हैं ।

(९) योगविद्या के साथ ...... विद्या नहीं है तो योगविद्यावाले का पतन हो सकता है ।

(१०) जिसमें परमात्मा की, महापुरुषों की अनुभूति है, जो परमात्मशांति देनेवाली है वह तो पुस्तक नहीं .... है । ❐
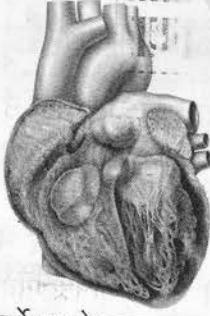
हृदयरोग सुरक्षा व उपाय

पूरे विश्व में हृदयरोग से मृत्यु पानेवालों में भारतीयों की संख्या सर्वाधिक है। सर्वेक्षण के अनुसार भारत का हर पचीसवाँ व्यक्ति हृदयरोग से पीड़ित है। हृदय मन, चेतना व ओज का आश्रय-स्थान व मर्मस्थल है। यह अविरत कार्यरत रहता है। यह एक घंटे में शरीर के अंग-प्रत्यंगों में ३०० लीटर रक्त प्रसारित करता है। हृदय को दो छोटी-छोटी धमनियों (Coronary arteries) से रक्त मिलता है। उनमें अवरोध उत्पन्न होने से हृदय की मांसपेशियों को पर्याप्त रक्त नहीं मिल पाता और वे क्षतिग्रस्त हो जाती हैं। परिणामतः हृदय को अपना कार्य करने में कठिनाई होती है व हृदयदौर्बल्य, हृदयशूल, हृदयावरोध, हृदयाघात आदि गंभीर व्याधियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। तीव्रता से बढ़नेवाले इस रोग का मुख्य कारण सदोष आधुनिक जीवनशैली है।

गरिष्ठ आहार, शारीरिक परिश्रम का अभाव, मानसिक तनाव, धूम्रपान, मादक द्रव्यों व औषधियों का सेवन, क्षमता से अधिक कार्य, कलह, क्रोध, ईर्ष्या - ये हृदयरोग के प्रमुख कारण हैं।

हृदयरोग की सरल, अनुभूत चिकित्सा :

(१) लौकी हृदय के लिए हितकर, कफ-पित्तशामक व वीर्यवर्धक है। एक कटोरी लौकी के रस में पुदीने व तुलसी के ७-८ पत्तों का रस, २-४ काली मिर्च का चूर्ण व १ चुटकी सेंधा नमक मिलाकर पीयें। इससे हृदय को बल मिलता है और पेट की गड़बड़ियाँ भी दूर हो जाती हैं।

(२) नींबू का रस, लहसुन का रस, अदरक का रस व सेवफल का सिरका समभाग मिलाकर धीमी आँच पर उबालें। एक चौथाई शेष रहने पर नीचे उतारकर ठंडा कर लें। तीन गुना शहद मिलाकर काँच की शीशी में भरकर रखें। प्रतिदिन सुबह खाली पेट २ चम्मच लें। इससे रक्तवाहिनियों का अवरोध (Blockage) खुलने में मदद मिलेगी।

(३) अगर सेवफल का सिरका न मिले तो पान का रस, लहसुन का रस, अदरक का रस व शहद प्रत्येक १-१ चम्मच मिलाकर लें। इससे भी रक्तवाहिनियाँ साफ हो जाती हैं। लहसुन गरम पड़ता हो तो रात को खट्टी छाछ में भिगोकर रखें।

(४) उड़द का आटा, मक्खन, अरण्डी का तेल व शुद्ध गूगल समभाग मिलाके रगड़कर मिश्रण बना लें। सुबह स्नान के बाद हृदयस्थान पर इसका लेप करें। २ घण्टे बाद गरम पानी से धो दें। इससे रक्तवाहिनियों में रक्त का संचारण सुचारु रूप से होने लगता है।

(५) एक ग्राम दालचीनी चूर्ण एक कटोरी दूध में उबालकर पियें। दालचीनी गरम पड़ती हो तो एक ग्राम यष्टिमधु चूर्ण मिला दें। इससे कोलेस्ट्रॉल की अतिरिक्त मात्रा घट जाती है।

(६) भोजन में लहसुन, किशमिश, पुदीना व हरा धनिया की चटनी लें। आँवले का चूर्ण, रस, चटनी, मुरब्बा आदि किसी भी रूप में नियमित सेवन करें।

(७) औषधि कल्पों में स्वर्णमालती, जवाहरमोहरा पिष्टि, साबरशृंग भस्म, अर्जुनछाल का चूर्ण, दशमूल क्वाथ आदि हृदयरोगों का निर्मूलन करने में सक्षम हैं।

हृदय के लिए हितकर पदार्थ (Cardiac tonics) :

देशी गाय का दूध व घी, आँवला, अनार, बिजौरा नींबू, नींबू, लहसुन, अदरक, सोंठ, आम, करौंदा, बेर, कोकम, खजूर, गन्ना, गेहूँ, केसर, नारियल जल व गंगाजल हृदय के लिए विशेष हितकर हैं।

सुबह सूर्योदय से पूर्व उठकर खुली हवा में २-३ कि.मी. घूमना, **(शेष पृष्ठ ३२ पर)**

पूज्य बापूजी की तस्वीर ने तकदीर बदल दी

मेरी शादी को दस साल हो गये, मुझे कोई संतान नहीं थी । बहुत दवा करवायी, जगह-जगह जाके दुआएँ लीं, भगवान की प्रार्थना पर प्रार्थना की, मन्नतें माँगीं, प्रेयरें कीं लेकिन मेरी कोख खाली ही रही । एक दिन मैं उल्हासनगर आश्रम में गयी । वहाँ 'ऋषि प्रसाद' कार्यालय में मैंने पूज्य बापूजी की एक काफी बड़ी एवं मनमोहक तस्वीर देखी । तस्वीर देखते ही पता नहीं कैसे मेरे मन में एक नयी उमंग जगी । ''मुझे यह तस्वीर चाहिए''- ऐसा मैंने वहाँ खड़े एक साधक भाई से कहा तो उन्होंने कहा : ''मैं कार्यालयवालों से प्रार्थना करके यह तस्वीररूपी प्रसाद आपको दिला दूँगा लेकिन पहले आप भी मेरी तरह 'ऋषि प्रसाद' रूपी प्रसाद घर-घर पहुँचाकर समाज की सेवा करने का कुछ तो संकल्प लीजिये !''

मैंने तुरंत उन साधक भाई के सामने संकल्प लिया कि ''मैं दो सौ घरों तक यह प्रसाद पहुँचाऊँगी ।''

पूज्य बापूजी की कृपा से मैंने केवल एक ही महीने में दो सौ सदस्य बना लिये और मुझे पूज्य बापूजी की तस्वीर मिल गयी । कुछ दिनों बाद जब मैंने जाँच करायी तो पता चला कि मैं गर्भवती हूँ । धन्य हैं हम ऐसे गुरुदेव को पाकर जिनकी तस्वीर पाने की लालसा में 'ऋषि प्रसाद' की सेवा की तो बापूजी की तस्वीर ने हमारी तकदीर भी बदल दी । उसके बाद मैंने 'ऋषि प्रसाद सेवा मंडल' चलाने की सेवा खोज ली और अभी मेरे साथ सत्रह पुण्यात्मा 'ऋषि प्रसाद' की पावन सेवा में संलग्न हैं । इस सेवा से जीवन में निष्कामता के रस का भी अनुभव होने लगा है ।

पूज्य बापूजी की इस अहैतुकी कृपा के लिए मैं सदैव ऋणी हूँ । मेरे अनुभव को जानकर हमारे एक परिचित, जो बापूजी को पहले नहीं मानते थे, वे भी कहने लगे : वाह ! वाह !!...

जो न करे राम, वो करे साँई आशाराम !

मेरी सभी सज्जनों से विनम्र प्रार्थना है कि आप दो सौ परिवारों को नहीं तो कम-से-कम अपने रिश्तेदारों एवं परिचितों को तो ऋषियों के इस प्रसाद का लाभ दिलाइये, तो आप पर भी गुरुकृपा बरसेगी इसमें कोई संदेह नहीं ।

- किरण तिवारी, कैलास नगर, अम्बरनाथ, जि. थाणे (महा.)। □

आरती में कपूर का उपयोग

हमारे देश में प्राचीनकाल से ही आरती करने का विधान है। आरती के समय कपूर जलाया जाता है । कपूर-दहन में बाह्य वातावरण को शुद्ध करने की अद्‌भुत क्षमता है। इसमें जीवाणुओं, विषाणुओं तथा सूक्ष्मतर जीवों को नष्ट करने की शक्ति है। घर में नित्य कपूर जलाने से घर का वातावरण शुद्ध रहता है, शरीर पर बीमारियों का आक्रमण आसानी से नहीं होता, दुःस्वप्न नहीं आते और देवदोष तथा पितृदोषों का शमन होता है। ऐसे ही कपूर मसलकर घर में (खासकर ध्यान-भजन की जगह पर) थोड़ा छिड़काव कर देना भी हितावह है ।

संस्था समाचार

('ऋषि प्रसाद' प्रतिनिधि)

एक समय के अखंड भारतवर्ष की राजकीय अखंडता भले ही कायम न रही हो लेकिन सांस्कृतिक अखंडता संतों के कृपाप्रसाद से आज भी बनी हुई है, फिर चाहे वह पाकिस्तान हो या नेपाल। इसी कड़ी में भारत के महामनीषी तत्त्ववेत्ता पूज्य बापूजी का सत्संग-प्रसाद पाने का सौभाग्य नेपाल की जनता को मिला। इन लोकलाड़ले संत के दर्शन की नेपालवासियों की उत्सुकता पूज्यश्री की सरलता व सहजता से ओतप्रोत छवि देख अहोभाव में बदल गयी। **२३ व २४ जून** को **काठमाण्डू** में एक ओर जहाँ नेपाल के कोने-कोने से लोग बापूजी के दर्शन-सत्संग हेतु उमड़ पड़े, वहीं भारत से भी बड़ी संख्या में श्रद्धालु पशुपतिनाथ की इस नगरी में गुरुदेव के सान्निध्य का सुवर्णावसर पाकर पहुँचे थे। यहाँ उपस्थित अतिविशाल जनसमुदाय को सुखी व सम्मानित गृहस्थ-जीवन की कुंजी देते हुए बापूजी बोले : ''गृहस्थ का यह कर्तव्य है कि जब घर से कोई मेहमान जाय तो बाहर निकलकर उसको विदाई देनी चाहिए। इससे यश और पुण्य बढ़ता है। तुम्हारे घर कोई भी आ जाय, चाहे वह तुम्हारा दुश्मन हो तो भी हँसकर बात करो। खाने को कुछ दे दो, नहीं तो पानी ही पिला दो। प्रसन्नता व्यक्त करो कि आप आये तो अच्छा लगा। स्नेह व नम्रता से उसे विदाई दो। शत्रु को भी जीतने की यह तरकीब है।''

जिन संतों की उपस्थितिमात्र से वातावरण सात्त्विक होता है, जिनके मंगलमय जीवन से समाज में श्रेष्ठ जीवन का उच्चादर्श स्थापित होता है, जिनके हृदय में उठनेवाले सत्संकल्पों से प्राणिमात्र का कल्याण होता है, जो समाज के सम्पन्न वर्गों को अभिमान-मदमत्तता से तथा विपन्नता में फँसे गरीबों को दीनता से उबारकर उन्हें समता में, शाश्वत परमात्म-तत्त्व में स्थापित करते हैं, ऐसे समाज के आधार-प्रेरक-आदर्श गुरुओं, ऋषि-मुनियों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करने का पर्व है गुरुपूर्णिमा पर्व !

इस बार भी विशाल शिष्य-समुदाय को ध्यान में रखते हुए पूज्य बापूजी ने भोपाल, रायपुर, नागपुर, पुणे, दिल्ली व अमदावाद - छः जगहों पर गुरुपूर्णिमा दर्शन-सत्संग कार्यक्रम प्रदान किये।

२७ व २८ जून को **भोपाल** में गुरुपूर्णिमा महोत्सव का आयोजन हुआ। पूज्यश्री के आने से पहले-पहले वरुणदेव ने कृपा कर वातावरण की तपन को शांत किया तो दूसरे दिन पूज्यश्री की नूरानी निगाहों से बरसती कृपाधाराओं ने मध्यप्रदेश व पड़ोसी राज्यों से बड़ी संख्या में उमड़े गुरुदर्शनाभिलाषियों के अंतर्मन में शीतलता, मधुरता का एहसास कराया। साधना-मार्ग में तत्परता को आवश्यक बताते हुए पूज्यश्री बोले : ''हम सभीको अपने कार्य में तत्पर होना चाहिए। जो अपने कार्य में तत्पर नहीं है वह कर्मयोग में तत्पर नहीं है, वह भक्तियोग में भी तत्पर नहीं होगा और ज्ञानयोग में भी तत्पर नहीं होगा। लापरवाह आदमी तो कुत्ते से भी बेकार होता है। ऐसे लोग तो जहाँ भी रहते हैं वहीं मुसीबत पैदा कर देते हैं।''

२८ व २९ जून को छत्तीसगढ़ की राजधानी **रायपुर** में पहली बार गुरुपूर्णिमा महोत्सव का आयोजन हुआ, जिसमें वहाँ के मुख्यमंत्री डॉ. रमण सिंह, गृहमंत्री नन्कीराम कँवर, कृषिमंत्री चंद्रशेखर साहू, विधानसभा अध्यक्ष धर्मकौशिक गुरुपूर्णिमा के दर्शन-सत्संग कार्यक्रम में उपस्थित रहे।

पूज्य बापूजी ने कहा : ''अहंकारी आदमी अपने पद के नशे में ऐसे खोये रहते हैं कि सात-सात पीढ़ियों को तारनेवाले सत्संग को तो छोड़ देते हैं लेकिन जन्मों तक भटकानेवाले अहं को

नहीं छोड़ते । जो अहं को किनारे रखकर सत्संग की शरण में आ जाते हैं, उनका कुल और गोत्र धन्य हो जाता है ।''

३० जून को **नागपुर** में मात्र एक सत्र के सत्संग में पूज्यश्री के दर्शन-सत्संग की एक ही झलक श्रद्धालुओं को कृतकृत्य कर गयी, जिसका एहसास वापस लौट रहे भक्तों के चेहरों पर साफ दिखायी पड़ रहा था ।

१ व २ जुलाई को **आलंदी, पुणे** में महाराष्ट्र व दक्षिण भारत की जनता ने पूज्यश्री के मुखारविंद से निःसृत भक्ति-भागीरथी में अवगाहन किया । यहाँ दोनों दिन श्रद्धा का सागर लहराता रहा । अपने कर्मों के प्रति सावधान रहकर जीवन ईश्वरमय बनाने के लिए प्रेरित करते हुए गुरुदेव बोले : ''कर्म अंधे होते हैं, कर्म को अपनी ज्ञान की आँख नहीं होती । वहाँ कर्ता के भाव, प्रकृति का विधान, ईश्वर का संविधान, ईश्वर की सत्ता काम करती है । अगर हम अच्छे कर्म करें व ईश्वर को अर्पण करें तो ईश्वर हमारी बुद्धि में योग देता है और बुरे कर्म हो गये हैं तो हम पश्चात्ताप करके उन्हें दूसरी बार न करें यह असली पश्चात्ताप हो गया ।''

४ व ५ जुलाई को **द्वारका, दिल्ली** में दिल्लीवासियों को व्यासपूर्णिमा पर्व की मंगलमय गरिमा-महिमा से परिचित कराते हुए पूज्यश्री के मुखारविंद से जो अमृतवचन निकले वे हृदयपटल पर गुरुपूर्णिमा पर्व के प्रति, आत्मज्ञानी गुरुओं के प्रति विलक्षण अहोभाव को अंकित कर गये । बापूजी ने कहा : ''व्यासपूर्णिमा का पर्व हमारी सोयी हुई शक्तियों को जगाने का पर्व है । जन्म-जन्मांतरों से भटक-भटकके सब कुछ खोकर कंगाल होते आये हैं । यह हमारी उस कंगालियत को मिटाने का पर्व है । हमारे रोग-शोक को, अज्ञान को हरके भगवद्ज्ञान, भगवत्प्रीति, भगवद्रस, भगवत्सामर्थ्य भरनेवाला पर्व है । हमारी दीनता-हीनता को छीनकर हमें ईश्वर के वैभव से, ईश्वर की प्रीति से, ईश्वर के रस से सराबोर करनेवाला पर्व है गुरुपूर्णिमा का पर्व ।''

७ जुलाई को गुरुपूर्णिमा पर्व **अमदावाद आश्रम** में सम्पन्न हुआ । गुरु-शिष्य के, भक्त-भगवान के संबंध की गहराई, दृढ़ता पर प्रकाश डालते हुए बापूजी बोले : ''हमारा तो कोई नहीं है - ऐसा कर-करके हम भगवान के साथ का नाता काटते हैं । बाहर का कोई भी नहीं हो फिर भी भगवान तो हमारे थे, हैं और रहेंगे । जब गुरु से दीक्षा ली है तो गुरु भले ही शरीर से दूर हैं फिर भी हम गुरु की सत्ता से जुड़े हैं, भगवत्सत्ता से जुड़े हैं, गुरुमंत्र से जुड़े हैं इसलिए कभी अपने को अनाथ, असहाय, तुच्छ, दीन-हीन मानकर निराश नहीं होना चाहिए ।'' ❐

(पृष्ठ २९ 'हृदयरोग : सुरक्षा व उपाय' का शेष)

प्राणायाम, ध्यान-धारणा, सूर्यनमस्कार व आसन (वज्रासन, पवनमुक्तासन, शलभासन, मयूरासन, सर्वांगासन, शवासन आदि) करना खूब लाभदायक है । पीपल के वृक्ष का स्पर्श करने से व उसके नीचे बैठने से भी लाभ होता है । हाथ की छोटी उँगली में सोने की अँगूठी पहनने से हृदय को बल मिलता है । पेट हलका रहे, पेट में वायु न हो व कब्ज न रहे इसका ध्यान रखें । रात को सोने से पहले त्रिफला अथवा छोटी हरड़ का चूर्ण लिया करें । हफ्ते में एक दिन उपवास रखें । दिन में सोना, रात्रि-जागरण, रात को देर से भोजन सर्वथा त्याग दें । मन को शांत, निश्चिंत व प्रसन्न रखें ।

जिन्होंने पूज्यश्री से मंत्रदीक्षा ली है उन्हें एक आशीर्वाद मंत्र मिलता है, जिससे उच्च रक्तचाप (High B.P.), निम्न रक्तचाप (Low B.P.), हृदयरोग, पीलिया नहीं होता और जिन्हें मंत्र लेने से पहले ये व्याधियाँ हुई हों उन्हें उनमें लाभ होता है । इस मंत्र के जप के प्रभाव से शनिपीड़ा शांत होती है। हृदयरोगवालों को तुरंत पूज्यश्री से वह आशीर्वाद मंत्र ले लेना चाहिए । ❐

गुरुपूर्णिमा महोत्सव की झाँकियाँ